काव्य तरंगिणी

42



२१, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

प्रथम संस्करण मूल्य २=)

प्रकाशक—
बंगीय हिन्दी परिषद्
बंकिम चैटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

मुद्रक—
कर्मराजी प्रिंटिंग प्रेस
७२, रतन सरकार गार्डेन स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

अनुक्रमणिका

—::o::o::—

—::o::o::—

हिन्दी-काव्य की पृष्ठ-भूमि

—::०::०::—

लगभग पिछली अर्ध-शताब्दी से भारतीय एवं यूरोपीय विविध विद्वानों का ध्यान अनेक कारणों से देश की आधुनिक भाषाओं तथा उनके साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। यों तो प्रायः सभी भारतीय भाषाएँ तथा उनका साहित्य संस्कृत और प्राकृत से अनेक रूपों में केवल शृंखलाबद्ध ही नहीं है, वरन्, अपनी वर्तमान निधि भी वहीं से लिये बैठे हैं। किन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी हिन्दी का अपना विशेष महत्त्व है। केवल अपने अति-विस्तार के कारण ही नहीं, वरन्, अपनी असाधारण साहित्यिक तथा भाषागत पुष्टता, और श्री-सम्पन्नता के लिये भी वह समादृत है।

जहाँ तक सूचना प्राप्त है हिन्दी के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से ही हुआ था। किन्तु उसके उपरान्त साहित्य की ओर अभिरुचि उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। यह कहना अनुचित न होगा कि देव-वाणी संस्कृत की ज्येष्ठा-पुत्री हिन्दी अपनी भाषागत विशेषाओं में तथा साहित्यिक समृद्धि में परम श्री-सम्पन्ना जननी की ही भाँति विविध प्रकार के वैभव से युक्त रही है, किन्तु राजनीतिक विषम परिस्थितियों के कारण जहाँ एक ओर हमारा साहित्य नष्ट हो गया, वहीं बहुत अधिक साहित्य कुछ दबा-सा पड़ा रहा, और उसका प्राप्त करना कठिन हो गया। आज तक भी हम

कहने में असमर्थ हैं कि बचा हुआ साहित्य भी प्राप्य है। ऐसी परिस्थितियों में इसका प्रारम्भिक अध्ययन कितना अधूरा संभव रहा होगा, इसकी कल्पना करना कठिन नहीं। पहिले के लिखे गये विविध इतिहासों को उठाकर यदि देखा जाए तो उपर्युक्त सत्य अपने आप प्रकट हो जाता है। उस काल के विविध लेखकों ने हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक माना है। काल विषयक इतना वैषम्य आज भी एक पहेली-सा ही बना हुआ है। इसकी ओर संकेत करते हुए अनेक वर्ष पूर्व स्वर्गीय डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने बड़ा उपयोगी सुझाव दिया था। संसार की भाषाओं तथा उनके साहित्य के प्राकृतिक विकास-क्रम को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने स्थापना की थी कि किसी भी साहित्य का जन्म पहिले पुष्ट भाषा की अपेक्षा करता है और भाषा की पुष्टता कुछ दिनों या वर्षों में नहीं शताब्दियों में प्राप्त हुआ करती है। भाषा-विज्ञान के सिद्ध नियमों के आधार पर ही उन्होंने कहा था कि उत्तर भारत की आधुनिक भाषाएँ विविध अंचलीय प्राकृतों से विकसित हुईं, किन्तु मूल प्राकृतों और आधुनिक भाषाओं के प्राप्त रूपों में कड़ी का स्थान है, विविध अपभ्रंशों का। किन्तु आधुनिक भाषाओं के मूल विकसित रूपोंके त्वरित परिमार्जनमें प्राकृतोंकी अपेक्षा संस्कृतका हाथ विशेष है। इन तथ्यों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि लगभग ८ वीं शताब्दी के आसपास का प्राप्त होनेवाला सिद्धों का साहित्य प्रतिपादित करता है कि लगभग दो सौ वर्ष पहले आधुनिक हिन्दी का आदि अथवा मूल भाषा रूप प्रस्फुटित हो चुका होगा, जो प्राकृत और अपभ्रंश के बाद का प्रकृत विकसित रूप था; किन्तु वह संस्कृत के परिमार्जन से हीन था।

सिद्धों की बाणियों के पूर्व का साहित्य भी अब हमें उपलब्ध है। उसमें भी प्राप्त हिन्दी के मूल स्वरूप का यथेष्ट साम्य मिलता है, किन्तु वह परिमार्जन से युक्त है। इन्हीं कतिपय सूक्ष्म किन्तु तात्त्विक विशेषताओं के आधार पर मुनि जिन विजयजी की मान्यता है कि सिद्धों के पूर्व का साहित्य निश्चित रूपसे प्राकृत और अपभ्रंश का है उसे हिन्दी का पूर्व रूप मानना बहुत युक्ति-संगत नहीं है। किन्तु "दूहा-कोष" इत्यादिक से बाद का साहित्य अवश्य ही हिन्दी के नव विकास की सूचना देता है।

उपर्युक्त विवेचन के बाद निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्राकृत और अपभ्रंशों का हिन्दी के रूप में नव विकास शायद छठवीं और सातवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ हो चुका था, और धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों उसमें सहज-अपेक्षित पुष्टताके दर्शन होने लगे त्यों-त्यों लगभग आठवीं शताब्दी के आसपास उसीके माध्यम से साहित्य रचना भी होने लगी। यह कहना गलत नहीं है कि इस नव विकसित भाषामें साहित्य रचना के बाद भी अपेक्षित परिमार्जन अधिक विलम्ब से हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि इस काल में भी तथा इसके उपरान्त भी अनेक शताब्दियों तक साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिये परमपुष्ट, परिमार्जित तथा सुसम्पन्न शब्दावली और व्याकरण से युक्त संस्कृत, प्राकृत और विविध अपभ्रंशों के माध्यम सुलभ थे, अतः नव-विकसित हिन्दी में ही साहित्यिक अभिव्यक्तिकी अनिवार्यता न थी। इस कथन का एक प्रमाण यह भी है कि प्रारम्भिक काल की जो साहित्यिक सामग्री सिद्धों इत्यादिक की वाणियों के रूप में हमें प्राप्त है वह अपने स्वरूप और निमित्त में किसी भी कलात्मक प्रेरणा की सूचना नहीं देता। छन्द-बद्ध अवश्य है उसमें काव्यांगों के स्वीकृत तत्त्वों के रूप में कुछ अलंकार तथा उक्ति-सौष्ठव अथवा उक्ति-गांभीर्य के उदा-

हरण भी मिल जाते हैं। संभव है थोड़ा बहुत रस भी कहीं-कहीं मिले किन्तु उक्ति-चातुर्य अथवा क्रम-बद्ध अलंकार-योजना या रस-निष्पत्ति की विशेष चेष्टा के दर्शन नहीं होते। उस काल की हिन्दी की सामग्री में काव्य-रसानंद की अपेक्षा ज्ञानानन्द ही अधिक मिलता है। किन्तु उसी कालमें विरचित कितनी ही कृतियां संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की मिलती हैं, जो कलात्मक साहित्य की तथा विविध भारतीय "विद्याओं" की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इसीसे सिद्ध होता है कि उस प्रारम्भिक काल में नव-विकसिक हिन्दी कलाविदों अथवा विद्वद्जनों की अभिव्यक्तिका माध्यम नहीं बन पाई थी। जैसा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरीने कहा है सिद्धों तथा नाथपंथियों का उद्देश्य था जन-साधारण में अपने विचारों का प्रचार। इस नाते उन्हें जन-साधारण की भाषा में ही अपने सिद्धान्तों तथा विचारों को रखना अधिक समीचीन जान पड़ा। यही परम्परा इन्हीं निमित्तों को लेकर आगे भी शताब्दियों तक चलती दीख पड़ती है कबीर, तथा अन्य सन्त एवं तुलसी, मीरा, सूर तथा अन्य मध्यकालीन भक्त, साधक और उपासक इसी पुष्ट परम्परा के समर्थक थे। भले ही इनकी कृतियों तथा वाणियों में उत्कृष्ट कोटि का काव्य हमें मिल जाए, किन्तु यह निर्विवाद है कि इनकी प्रेरणा का स्रोत काव्य-साधना नहीं वरन् कविता के माध्यम से परमज्ञान वितरण ही था।

काव्य-कला का विवेचन करते हुए कार्लाइल ने ठीक ही कहा है कि किसी भी भाषा का सुसंस्कृत परिमार्जन कवि के हाथों उसकी कविता में ही संभव होता है, अर्थात किसी भी भाषा का सौष्टव यदि देखना हो तो वह उस भाषा के काव्य में ही निखरा मिलेगा। यह सत्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता। भाषा के प्राकृतिक विकास का भी अपना सौन्दर्य है, और उसमें शक्ति भी कम नहीं है,

किन्तु संस्कार जन्य परिमार्जन, उससे भिन्न है। यह भेद शुद्ध लोहे और इस्पात के उदाहरण से भलीभाँति समझा जा सकता है। हिन्दी भाषा के क्रमिक-विकास का अध्ययन यदि इसमें प्राप्त काव्य सामग्री के आधार पर किया जाए तो हम प्राकृतिक विकास के चिरन्तन रहस्य से ही केवल परिचित न होंगे वरन् विविध प्राचीन लेखकों की अज्ञात तिथियों को कुछ अंशों में स्थिर करने की चेष्टा में भी सफल हो सकेंगे। इसी दृष्टि से यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्रारम्भिक काल की प्राप्त सामग्री के कुछ उद्धरण देकर आधुनिक हिन्दी के स्वरूप विकास की प्रारम्भिक कड़ियों का परिचय उपलब्ध किया जाए।

—::o::o::—

गोरखनाथ

परिचय

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडै देषै सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरंतर वास। भणंत गोरष मछयंद्रका दास॥
गुदडी जुग च्यारि तैँ आई। गुदडी सिध-साधिकां चलाई।
गुदडीमें अतीतका वासा। भणंत गोरख मछयंद्रका दासा॥
मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ।
नाद हमारै वाहै कवन। नाद बजाया तूट पवन।
अनहद सबद बाजत रहै। सिध-संकेत श्रीगोरख कहै॥
नौ नाथ नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव॥
आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता। व्यंद तोलै राषीले गोरष अवधूता॥

सहजयान

हबकि न बोलिबा ठबकि न चालिवा धीरै धरिबा पाँव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥
गिरही सो जो गिरहै काया। अभि-अंतरकी त्यागै माया।
सहज-सीलका धरै शरीर। सो गिरही गंगाका नीर ॥
निद्रा सुपनैं विन्दु कूं हरै। पंथ चलंतां आतमाँ मरै।
बैठां षैटपट ऊभां उपाधि। गोरख कहै पूतां सहज-समाधि ॥
जिहि घर चंद-सूर नहिँ ऊगै, तिहि घरि होसि उजियारा।
तिहां जे आसण पूरौ तौ सहजका भरौ पियाला मेरे ज्ञानी ॥
सहज-पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजौ सब ढबका ॥
सहज गोरखनाथ बणिजे कराई, पंच बलद नौ गाई।
सहज सुभावै वाषर ल्याई, मोरे मन उड़ियानी आई ॥
भणंत गोरखनाथ मछिंद्रका पूता, एता वणिज ना अरथी।
करणी अपणी पार उतरणी, वचने लेणां साथी।
काया गढ़ लेबा जुगे-जुग जीवा ॥ टेक ॥
काया गढ़ं भीतरि नौ लष खाई, जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई।
ऊँचे नींचे परबत झिलमिल षाई, कोठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई।
इहां नहीं उहां नहीं त्रिकुटी-मंझारी, सहज-सुनि मैं रहनि हमारी।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथपूता, कायागढ़ जीति लेगोरष अवधूता।
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥ टेक ॥

मारौ स्रपणीं जगाई ल्यौ भौरा,

जिनि मारी स्रपणीं ताकौं कहा करै जौंरा।

स्रपणीं कहै मैं अबला बलिया,

ब्रह्मा विस्न महादेव छलिया।

माती माती स्रपनीं दसौ दिसि धावै,

गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै।

अवधू सहज हंसका षेल भणीजै, सुंनि हंसका बास।
सहजैं ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास।
अवधू सहज-सुनि उतपना आइ। समि सुनि सतगुरु बुझाइ।
अतीत सुनिमैं रह्या समाइ। परम-तत्व मैं कहूं समझाइ।
बांफ न निकसै बूँद न ढलके, सहजि अंगीठी भरि भरि रांधै।
सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परचै साधै।
षांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवां थिर होइ सांस।

दर्शन

घरबारी सो घरकी जाणै। बाहरि जाता भीतरि आणै।
सरब निरंतरि काटै माया। सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया।
पंच तत्त ले सिधां मुडाया, तब भेंटि ले निरंजन-निराकारं।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तब लूटि ले अषै भंडार।
अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस-परस ते दरस जाणी।
सुनि गरजंत वाजंत नाद, अलेष लेषंत ते निज प्रवाणी।
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न।
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल।
माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन-निराकारं।
गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधारं।

नाद-विन्द गांठि प्रवानां। कवण घटि जोति कवण अस्थानां।
कहा निरंजन बासा करही। कहाँ काली नागनी मीडक धरहीं॥
कहाँ जलधर पवना मेला। उंद्र कहाँ बिलइया घेरा।
सींगी नाद कहाँ जोगी पूरा। जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा॥
आकाश-तत सदा-शिव जांण। तसि अभिअंतरि पद-निरबाण।
प्यंडे परचानैं गुरमुषि जोइ। बाहुडि आवागवन न होइ।
जोगी सो जो राषै जोग। जिभ्या यन्द्री न करै भोग।
अंजन छोड़ि निरंजन रहै। ताकू गोरख योगी कहै॥
सुंनि ज माई सुंनि ज बाप। सुंनि निरंजन आपै आप।
सुनिकै परचै भया सथीर। निहचल जोगी गहर-गंभीर॥
अवधू मनका सुंनि रूप, पवनका निरालंभ आकार।
दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवैं द्वार॥
अवधू हिरदा न होता तब सुंनि रहिता मन।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन॥
रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद।
गगन न होता तब अंतरष रहिता चंद॥
स्वामी कौण तेज थैं जोति पलटै। कौण सुंनि थे बाबा फुरै।
कौण सुंनि थैं त्रिभुवन सार। कौण सुंनि थैं उतरिबा पार॥
अवधू सुंने आवै सुंने जाइ। सुंने चीया रहे समाइ।
सहज-सुंनि मन-तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै॥
अवधू सवद अनाहद सुरति सोचित। निरति निरालंभ लागै बध।
दुबध्या मेटि सहजमें रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै।
सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास।
उरध गोढ़ कियौ विसतार, जाणनै जोसी करै विचार।
भणत गोरखनाथ मछिन्द्रनाथ पूता, मार्‍यौ मृघ भया अवधूता।
याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै।

गुंरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथ अमी-महारस छीजै ॥ टेक ॥
दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै॥
नदी तीरै विरषा नारी संगै पुरषा अलप-जीवनकी आशा।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध विनासा॥
गोड़ भये डगमग पेट भया ढीला, सिर बगुलाकी पँखियाँ।
अमी-महारस वाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अंखियां॥
बाँविनीको निदिलै वाघनीको विंदिलै बाघनी हमारी काया।
बाघनी घोषि घोषि सुन्दर षाये भणत गोरखराया।
बांधौ बांधौ वछरा पीओ पीओ षीर। कलि अजरावर होइ सरीर।टेक।
आकासकी धेन बछा छाया। तो धेनकै पूछ न पावा।
बारह बछा सोलह गाई। धेन दुहावत रैन विहाई।
अचरा न चरै धेन कटरा न षाई। पंच ग्वालियाँकौ मारण धाई।
यही धेनक दूध जु मीठा। पीवै गोरखनाथ गगन बईठा॥
साँभलि राजा बोल्या रे अवधू। सुणै अनोपम वाणी जी।
निरगुण नारी सूँ नेह करंता। झबकै रैणि विहाणी जी। टेक।
डाल न मूल पत्र नहि छाया। बिण जल पिंगुला सीचै जी।
विणही मढ़ीयां मंदला बाजै। यण विधि लोका रीझै जी।
चीट्यां परबत ढोल्या रे अवधू। गायां बाघ बिडास्या जी।
सुसलै समदा लहरि मनाई। मृघा चीता मास्या जी॥
ऊझड़ि मारगि जाता रे अवधू। गुर बिन नहीं प्रकासा जी।
जीत्या गोरष अब नहीं हारै। समझि रालै पासा जी।
गोरष बालड़ा बोलै सतगुरु वाणी रे।
जीवता न परराया तेन्हैं अगनि न पांणीं रे॥ टेक॥
षीलौ दूझै भैंसि बिरोलै, सासूड़ी पालनड़ै बहुड़ी हिंडोलै।

कोयल मोरी आंबौ वास्यौ, गगन मछलड़ी बगलौ ग्रास्यौ ।
करसन पाकू रषवाल्लू षाधू, चरि गया मृघला पारधी वांधू ।
सींगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चंद न सूरा ।
बैठा अवधू लोकी षूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा ।
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइबा कानं ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निर्वान ।
उलट्या पवना गगन समोइ, तब वालरूप परतषि होइ ।
उदै ग्रहि अस्त हेम ग्रहि पवन मेला, बँधिलै हस्तिया निज साल भेला ॥
अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा, सोषीला गंग-जमनका पानी ।
चंद-सूरज दोऊ सनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिनाणी ॥
अवधू रवि अमावस चंद सुपड़िवा । अरधका महारस ऊरध ले चढ़िवा ॥
गगन् अस्थाने मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥
षरतर पवना रहै निरंतरि । महारस सीझै काया अभिअंतरि ।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया । सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥
गगनि-मंडलि मैं गाय बियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँड़ि पिंडता पीनी सिधा माषण खाया ॥
नाथ बोले अमृत वाणी वरिषैगो, कंवली भीजैगा पाणी । टेक ।
गड़ि पड़रवा बाँधिलै षूंठा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।
कउवाकी डाली पीपल बासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।
चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।
ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।
ऊजड़ षेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।
मगरी परि चूँल्हा धूंधाइ, पोवणहाराकौ रोटी खाइ ।
कामिनि जलै अँगोठी तापै, बिच वैसंदर थरहर काँपै ।

एक जु रढिया रढती आई, बहू बिबाई सासू जाई।
नगरीकौ पाणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै।
अवूझि वूझि ले हो पंडिता, अकथ कथिलै कहाणी।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी।
मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै॥ टेक॥
कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी।
बमनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँडी।
राजाकै घरि सेल आछै, जंगल-मधें बेल।
तेलीके घरि तेल आछै, तेल-वेल-सेल।
अहीरकै घरि महकी आछै, देवल-मध्ये ल्यंग।
हाटी-मधे हींगँ आछै, हींगँ, ल्यंग, स्यंग।
एकै सुत्रैं नाना वणियाँ, वहु भाति दिखलावै।
भणंत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै।
संयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवनका काल।
छाड़ौ तंत-मंत वेदंत। जंत्र गुटिका धात पषंड।
जड़ी-बूटीका नांव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी बाट।
नैण महारस फिरौ जिनि देस। जटा भार वँधौ जिनि केस।
रुष-विरष-बाड़ी जिनि करो। कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ।
छोड़ौ बैद-बणज-ब्यौपार। पढ़िवा गुणिबा लोकाचार।
पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि विटंबौ आप।
जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली रांड वैदकी होइ।
जड़ी-बूटी अमर जे करे। तौ वैद धनंतर काहे को मरै।

सोनै रूपै सीझै काज । तौ कत राजा छोड़ै राज ।
पसुवा होइ जपै नहिं जाप । सो पसुवा भोंषि क्यों जात ।
निसपती जोगी जानिबा कैसा । अगनी पाणी लोहा माने जैसा ।
राजा-परजा सम करि देष । तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष ।
भग-मुषि ब्यंद अगनि-मुष पारा । जो राखै सो गुरू हमारा ।
षायें भी मरिये अणषायें भी मरिये । गोरख कहै पूता संजमि ही तरियै ।
मधि निरंतर कीजै बास । निहचल मनुवा थिर होइ साँस ।
आओ देबी बैसो । द्वादिस अंगुल पैसो
पैसत पैसत होइ सुष । तब जनम-मरनका जाइ दुष ।
स्वामी काचीं बाई काचा जिंद । काची काया काचा विंद ।
क्यूँ करि पाकै क्यूं करि सीझै । काची अगनीं नीर न षीजै ॥

—::०::०::—

पुष्पदन्त

परिचय

उद्-बद्ध-जूट भ्रूभंग-भीष । तोडेबियउ चोलहिंकेर शीर्ष ।
भुवन्-एकराम राजाधिराज । जहँ आछैं तुडिग महानुभाव ।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर । महि परिभ्रमंत मेपाडि नगर ।
अवधीरिय खल-जन गुण-महंत दिवसेंहिं तहँ आयेंउ पुष्पदन्त ।
दुर्गम-दीरघ-पंथे 'वतीर्ण । नव-चंद्र जिमी देहेहिं क्षीण ।
तरु-कुसुम-रेणु-रंजित समीर । माकंद-गुच्छ गोंदलिय कीर ।
नंदनवन फुरि विश्रमै जहाँ । तब दोउ पुरुष आयेउ तहाँ ।

प्रणमीया तेहीं कहेंउ एम। "हे खंड-गलित-पापावलेप !
परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुगगुसंत। क्योंकर निवसहु निर्जन-वनांत ?
करि सेर वाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहू न क्यों पुर-वर-विशाल ?"
सो सुनिय भनै अभिमान-मेरु। "वरु खाइया गिरि-कंदरें कसेरु।
नहिं दुर्जन-भौंहाँ-वंकिमाइँ। देखहूं कलुष-भावांकिताइँ।
वरु नरवर धवलक्ष्मि होंउ, न कुक्षिहि, मरौ शोणित मुंह निर्गमें।
खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटित-नयना न निहारौं सूरोद्गमे॥
चमरानिलहीं उडेंऊ गुणाइं। अभिषेक-धोइ सुजनत्तनाइ।
अविवेकेंह दर्पोत्तालियाइँ। मोहांधताँ-मारण-शीलियाइँ।
विषसँग जनमी जड रक्तियाइ। की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ।
संप्रति जन नीरस निर्विशेष। गुणवंतउ जहँ सुरगुरुहु वेष।
तहँ हमरेंहिं काननही शरणा। अभिमान-सहित वरु होंहु मरणा।"
..........................। प्रतिउत्तर दियेंउ नागर-नरेंहिं।

पावस

विश-कालिंदी-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलेआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील शाद्वला।
पटु तडि-पतन-पतित-विकट-चाल कुपित सिंह-दारुणा।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना।
गिरि-सरि-दरि सरंत सरसर-भय-वानर मोचु निःस्वना।
महियल घुलेउ-मिलेउ दुंदुभि शतपत्र-शालूर-पोषणा।

घन-कीचड़-खोल-खन-खेदित हरिन-शिलिंब-कदंब-वहा।
विकसित-नवकदंब-कुसुमोद्गत-रज-पिंजरेउ दिशि-पथा।
सुर-पति-चाप-तोरणालंकृत धन-करि-भरित नभ-थला।
विवर-मुखोदरांत-जलप्रवहारोसेंउ सविष-विषधरा।
"पिय पिय पिय" लपंत पपीहा माँगेंउ तोय-विंदुआ।
सरतीरोल्ललंत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-संयुता।
चंपक-चूत-चार-चव-चंदन-चिंचिनि-प्रीणीतायुषा।
उद्वेंउ झट जासु कालेंहिं जो सुखकारि पावसा।
मूँग-कुलिथ-काँगुन-जौ-करॉय-तिल-तीसी-धान-माषआ।
फल-भर नमेंउ मँजरि कण लँपट निबडेँउ शुक सहस्रआ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सखी।
हुई विविध-धान्यद्रुम-वेली-गुल्म-प्रसाधना मही।
स्कंधावारँह ऊपर अहनिश। तो नादहिं विकारिया पावस।
मृगकुल त्रसै-रसै वरसै घन। पीयल श्यामल विलसै सुर-धनु।
महि नीखरिउ हरित बाढे तनु। प्रवसित-प्रियहि पियहिं तप्पै मन।
फुल्लु कदंब ताम्र दीसै वन। तीमै तामैं मणि भूरै जनु।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागै हरि। तरु कड़कड़ै फुटै विहरै गिरि।
जल परिचलै घुरै घूमै दरि। अतिरय सरै भरै पूरै सरि।
जल-थल सकल जलहि सं-जायेंउ। मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेंउ।
शर-कूसुम-सर नितांत साँधैं। विरहे पंथिक पंथिय बिंधै।

हिमालय

शीतल-वेलि तरुवर-गहना। हिमवंतहु दक्षिण-गिरि-गहना।
जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आइँ। मृग दुर्ग्रह करि-भाल्लू-शताइँ।
साँभर वेकुल्ला रोहिताइँ। एणी जहँ पुलकित कूदियाइँ।
जहँ संचरइँ बहु मूँगुसाइँ। गर्त्ताइँ जहाँ निर घर्घसाइँ।
जहँ परडा कोक्कंता भ्रमंति। झिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमंति।
जहँ भील-पुलिंदा नाहराइँ। बीनंता तरु-बल्ली-फलाइँ।
जहँ कुक्करंति शाखामृगाइँ। झूलंता तरु-शाखा-गताइँ।
उड्डुन-शीला तांबूल-लागु। जहँ हरि खादंता कतहुं भागु।
जहँ घुरघुरंति दाठा-कराल। शूलाक्षहिं सँग जूझंति कोल।
कंदुल-गहर गर्दभा जहाँ। हरि हुल्लिहिं जहँ दूषियेंउ पंथ।
पंचासहु थूनें विदारिताइं। जहं भीली हरिनहिं मारियाइं।
जहं गहिरै धारें परिभ्रमंति। नित बादल-कुलहीं चुमचुमंति।
जहं बेली-वेष्टित तरुवराइं। जनु क्रीडै अवगुंठन पराइं।
सेना सेनाधिप-परिचरिता। हिमवंत धरा-वन-संचलिता।
सोहै सो जांती पूर्वमुखा। कुरुवंशनाथ-पार्थिव-प्रमुखा।
दीसै शैल-स्थलि-काननऊ। महिषी दुग्ध इव शाखा-घनऊ।
नाना महिरुह-फल-रस-धरइं। कतहूँ किलकिलहीं वानरहीं।
कतहूं रसरक्ता सारसइँ। कतहूँ तप तप्पैं तापसइँ।
कतहूं झरझरिया निर्झरइँ। कतहूँ जल-भरिया कंदरइँ।
कतहूं बीनैं बेली-फलइँ। दीसैं भाजंता नाहरइँ।
कतहूँ हरिना उल्ललियाइं। पुनि गौरी-गेहहु बलियाइं।
कतहूं हरि-नख-फरियइं। करि-कुंभ उछरिया मौक्तिकाइं।
कतहूं सुनियै यक्षिणी-धुनिऊ। खेचरि-करें वीणा हनहनिऊ।
कतहूं भ्रमर-कुल रुन-झुनिऊ। कतहूँ शुकेहिं का का भनिऊ।

कतहुँ किन्नरहिं गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ।
ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकह सारऊ।

राजमद

राज्यहि कारणें पितु मारिज्जै। बांधवहं (पुनि) संचारिज्ज।
जिमि अलि-गंये गउ संहारा। तिमि राज्येहि जीवितऊं वारा।
भट-सामंत-मंत्रि-कृत भायउ। चिंतीयंतउ सब उपरागउ।
तंडुल-पसरहं कारणें राना। नरक पडंति काइं अ-विजाना।
जारहु राज्यहु दुःख-गुरुकउ। यदी सुकूख का तेहीं मूकउ।

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेंहि वसुमतिहिं किमि वर्णिज्जै।
जो जो चिंतै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणें संपंज्जै॥
यक्षपंको (?) द्दढं वल्लभालिंगनं। मालती-मालिका कुंकुमालेपनं।
ऊंचओ मंचओ चारु-शय्यातलं। आवरोहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तलं।
उष्णओ भोजना तोपि धाराधरं। रक्तओ कंवलो वंद-रंध्रं घरं।
पूर्वपुण्येहिं सर्वं हि संयुक्तकं। शीतकालेहि तेंहि इं द्दशं भुक्तकं।
चंदनो चंद्रपादा प्रिया स्नेहिली। मल्लिका-दामकं तार-हारावली।
दाहिने मंथरो मारुतो शीतलो। बृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो।
वल्लरी-मंडपो पद्म-युक्तो सरो। वीजना-दोलना नीरको शीकरो।
गाढ-गाढं दही शीतलं पानियं। उष्णकाले हि तेंहिं ईद्दशं मानियं।

रूपश्री

ताहि घरनि मरुदेवि भटारी। जाहि रूपश्री अति गुरुकारी।
अमरन् पंक्तिहिं पद-प्रणमंतिइ। लंघायऊ हमरो नख-पंक्तिइ।
कमतल राये काह गवेषिउ। एंहि न्याईं नूपुरेहि प्रघोषिउ।
पर्ष्णिहिं रक्तउ चित्त प्रदर्शेउ। अंगुसियहिं सरलत्त्व प्रकाशिउ।

अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा। गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा।
नी-रोमउ विसिरिउ वत्तुॅलियउ। मसृणउ सोहियाउ अंगुलियउ।
जंघउ क्रमहानी अव-धरियऊ। दीसेंउ जनु खल-मित्रहँ किरियउ।
गूढा नरपति-मंत्रा भाषा। व्याकरणहिं इव रचित-समासा।
निविड-संधि-वंध जनु काव्या। देवि जाह्नवी इव अतिभव्या।
ऊरू-खंभ नराधिप-दमनहँ। तोरण-खंभा इव रति भवनहँ।
जातें स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ। कामतत्त्व जो देवेंहिं उक्तउ।
दीन थाप तेंहि श्रोणिबिंबहु। का वरनौ गरुअत्त्व नितंबहु।
गम्भीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईं।
संसर्ग वशे गुण काश हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेंईं॥
त्रिवली-सोपानेहि चढेविय। रोमावलि केंहुनी लंघेविय।
स्तनक-गिरिन्द्रारोहण-डोरा। लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिं। शुचि सौभाग्य जाहि हत्थतलहिं।
स्नेहबन्ध मणिबन्ध परिट्-ठिउ। लावण्ये समुद्र ना सं-ठिउ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा। मधुरउ इतरहु-केरउ खारा।
कंठलीहिं नहिं कंबू पावै। पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै।
निकट-निविष्टिउ जित-शशि-कान्तिहिं। धोवैधवलहिं न्याइ प्रवालहिं।
अधर-विम्ब रोचै रागालउ। मुक्तावलियहिं न्याइं प्रवालउ।
हमरे ठहर कदाचि न संमुख। ऋज्जुहु नासा-वंशउ दुर्मुख।
भौंहउं वंकपनहु नहि सहियउ। नयनहिं जलिपय कर्णहं कहियउ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लंबिउ। दोऊ गंड-तलैं प्रतिबिंबिउ।
कुंडल-श्री वहंत धवलाक्षिहिं। जिन-जननियहि स-लक्षण-कुक्षिहिं।
कुटिलालक भालतले निरंतर। मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ। मुख-शशधरभरेहिं जन तमसउ।
तरुणिहिं पृष्ठ पईठेउ दीसै। कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ विभासै।

राय गऊ निज शिविरेहिं तुरंत ।...। पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान
जोयउ गंगहिं सारसहँ युगल । जोवै कांता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिं सुललित-तरंग । जोवै कांता-त्रिवली-तरंग ।
जोयउ गंगहिं आवर्त्त-भ्रमण । जोवै कांता-वर-नाभि-रमण
जोयउ गंगहिं प्रफुल्ल कमल । जोवै कांता-प्रियवदन-कमल ।
जोयउ गंगहिं विचरंत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष
जोयउ गंगहिं मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।
जोयउ गंगहिं मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धमिल्ल-नील
निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मंदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिं तैसी ॥
निज वर्णे कनक-उरहों मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।
जो कंतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधाव ।
चारुत्त्व नभहँ ईहै कहंति । अंगुट्ठक-परमुन्नत वहंति ।
गुल्फा गूढत्तन जो धरंति । जनु भुवन-विजय मंत्र इव करंति
जंघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिं । वर्णिज्जै जनु घोषें हुयेहिं ।
वलौ मन्मथ वहु-विग्रहेहिं । जानू संधान-परिग्रहेहिं
ऊरू-थंभहिं रतिघर एँहीहिं । राजै मणि-रसना-तोरणेहिं ।
कठितल गरुत्तन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-थान ।
मणि चिंतवत शतखंड जाह । तुच्छोदरि कहँ गंभीर नाभि ।
शेषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहँ नदिही तरंग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कंठपाश ।
ग्रीवहें गतिवेगउ हृदयहारि । बद्धउ चोर इव रूपापहारि ।
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दंतेहिं जीतेंउ मौक्तिक-विलास ।
यदि भौहाँ-कुटिलत्तनेहिं, नर सु-धनु रुहेहिं प्रभामय ।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीं, सुंदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥

दर्शन

"की क्षण-विनाशि की नित्य एक। की देहस्थउ कर्महिं मुक्त।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप। की चतु-भूतहँ संयोग-भूत।
की निगुण निष्कल निर्विकार। की कर्महँ कारक की अ-कार।
ईश्वर-वसेहिं की रज-वशेहिं। संसरै देव! संसारकेहिं।
परमाणु-मात्र की सर्वगामि। आत्मा कहेंउ, भनु भुवन-स्वामि?"
..............। "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय।
तो की जानै निहितउँ निधान। वर्षह शतेउ निधि द्रव्य थान।
नित्यहु फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु। जल्पै यदि रज-लंपट असत्त्य।
यदि एकै ता को सर्गे सौख्य। अनुभोगै नरकें महंत दुःख।
यदि भूत-विकार भनंत भाव। तो फुर की लब्भै मति-विभाव।
निष्क्रियहू कहँ करणेहि भवंति। कहँ प्रजावंधु युक्तिउ थपंति।
यदि शिव-वश हिंडै भूत-सत्त्य। तो कर्मकांड सकलहु निरर्थ।
यदि अणुमात्रे जीव एहौ। तो सज्जीवउ कहँ करें देहौ॥
मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ। धोयो धोयो अति विट्टलऊ।
वासेंउ वासेंउ ना सुरभि मल्लु। पोसेंउ पोसेंउ ना धरै बल्लु।
तोषेउ तोषेउ ना आपनऊ। मोषेंउ मोषेंउ धर भायनऊ।
भूषेउ भूषेउ न सोंहावनऊ। मंडेउ मंडेउ भीषावनऊ।
बोलेंउ बोलेंउ दुःखावनऊ। चर्चेउ चर्चेउ चिरियावनऊ।
मंत्रेंउ मंत्रेंउ मरणहँ भसई। दीक्षेंउ दीक्षेंउ साधुहिं भषई।
शिक्षेंउ शिक्षेंउ न गुणे रमई। दुःखेंउ दुःखेंउ ना उपशमई।
वारेंउ वारेंउ हू पाप करै। प्रेरेंउ प्रेरेंउ हु न धर्म चरै।
अंतःपुर अंतः उर हनई। क्षय-कालह आयउ की करई।
सन्नाहकृत तहु की करई। छत्तो छायउ की उपकरई।

ना कतहुं मरन-दिन ऊबरइ चमरानिल श्वासानिल धरइ।

सुख राजपट्ट-बंधे वसई। की आयु निबंधन ना ह्रसई।

न रथेहिं रहिज्जै यमहुं वहू। की मनुजहँ लागउ राज्य-ग्रहू।

होइब जाइब सहसाहि किमि। राजत्वन संध्याराग-जिमि।

बहेल्ल ते भिल्ल ते मूक सो लल्ल। ते पंगु ते कुंट वधिरन्ध ते मंट।

ते कानां कनीन धन-हीन ते दीन। दुखरीन बलहीन।

निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम। नि-तेज नि-प्राण चंडाल ते प्राण।

ते डोम कलाल मछंधि नि-वाल। दढाल तें कोल ते सींह-शदूर।

ते श्रृंगी विकराल ते नभ-पधराल। ते पक्षि पिंछाल।

ते सर्प रक्ताक्ष मांसाशिन माच्छ। छिन्दनैं रुंधनैं वंधन वंचनैं।

लुंचनैं खंचनैं कुंचनैं लुट्टनैं। कुट्टनैं घट्टनैं वट्टनैं।

प्रोलनैं पीडनैं हूलनैं चालनैं। तलनाइं दलनाइं मलनाइं गिलनाइं।

तिर्यकेनारके मनुजे औ वृक्षे। दुःखाइं भुजंति स्वर्ग कहां जाति।

—::०::०::—

स्वयंभू

परिचय

बुध-जन स्वयंभू तोहि वीनवई। मोंहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी।

व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र बक्खानियउ।

ना सुनेउं पाँच महान् काव्य। ना भरत न लक्षण छन्द सर्व।

ना बूझेउं पिंगल-प्रस्तारा। ना भामह - दंडि - अलंकारा।

व्यवसाय तऊ ना परिहरऊं। वरु रयडा कहेंउ काव्य करऊं।

पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले वैठेंउ जवहीं ।
पसरै सुकविहिं काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनंगणे तबहीं ।
पसरै जिमि बुद्धी वहु-ज्ञानहँ । पसरै जिमि पापा पापिष्ठहँ ।
पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्ठहँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती जगनाथहँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती सुकुलीनहँ । पसरैं जिमि किलेश निहीनहँ ॥
पसरै जिमि शब्दा सुर-तूर्यहूं । पसरै जिमि राशि नभें सूरहँ ॥
पसरै जिमि दावाग्नि वनांतरें । पसरेंउ मेघ-जाल तिमि अंवरें ॥
तड़ि तड़-तड़ै पड़ै घन गरजै । जानकि रामहँ शरणहिं व्रजै ॥
अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयंदे चढें यशलुब्धा ।
ग्रीष्म नराधिप कहं ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ॥
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥
जंपिय मेघबृन्द आ-लागेउ । तड़ि करवाल प्रहारेहिं भागेउ ।
जनु हि पराङ्-मुख चलेंउ विशाला । उट्ठेंउ हनहनंत ऊष्णाला ।
धग-धग-धगंत उद्-धायउ । हस-हस-हस-हसन्त संजायउ ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता । ज्वालावलि फुलिंग मेलंता ।
धूमावलि-ध्वज-दंड उठायेउ । वर-बादली खड्ग कड्डायेउ ।
झड़-झड़-झड़-झड़न्त प्रहरंता । तरुवर-रिपु भट-ठट भञ्जंता ।
मेघ महागज-घट विघटंता । जनु उष्णाला दीख भिडंता ।
पावस-राव तवहिं आयंता । जल-कल्लोल शांति प्रकटंता ।
धनु फरकायेउ पावसहिं, तड़ि टंकार फार दरसंता ।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरंता ॥
जल-वाणासने घातहिं धायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहिं निपातेउ ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचइं मोर खल-दुर्जन ।

जनु पूरहिं सरिता आक्रंदे। जनु कपि किलकिलंति आनन्दे।
जनु परभृत विमोचु उद्घोषे। जनु वर्हिन लपंति परदोषे।
जनु सरवर बहु-अश्रु-जलोल्लित। जनु गिरिवर हर्षे गंजोल्लित।
जनु ऊषमिय दवाग्नि वियोगें। जनु नाचिय महि विविध-विनोदे।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दुःखे। जनु पइसे रजनी सति सौख्ये।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कंपिय। केंहेंहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय।
तेहेंहि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव वलदेव।
तरुवर-मूलें स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम॥

वसंत

कुव्वर नगर पहूँचेउ जब्बहिं। फागुन-मास प्रवोलेउ तव्वहिं।
पइसु वसंत-राव आनन्दे। कोइल-कलकल मंगल-शब्दे।
अलि-मिथुनेंहिं वंदीहिं पढ़न्तेंहिं। वर्हिन वामनेहिं नाचंतेहि।
आन्दोलित-शत-तोरणवारेहिं। ढुक्कु वसंत अनेक-प्रकारहिं।
कहिं कहिं चूत-वनहिं पल्लवितहिं। नव-किसलय-फल फूलुद्भवितहिं।
कहिं कहिं गिरि शिखरा वि-च्छाया। खल-मुख इव मसिवर्णहिं लाया।
कहिं कहिं माधव-मासहिं मेदिनि। प्रिय-विरहेंहि जनु श्वसही कामिनि।
कहिं कहिं गावैं वाजै माँदर। नर-मिथुनेहिं प्रनाचेंउ गोंदल।
सो तेहिं नगरहँ उत्तर-पासें। जन-मनहर योजन-उद्देशें।
दीख वसंत-तिलक उद्याना। सज्जन हियहि यथा अप्रमाणा।
जनु दीवस-पति धीरेइँ धीरे। माधव-मास न्याइं हंकारे।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन। दरसायऊ फागुने फा-गुन।
नव-फल-परिपक्वानन कानन। कुसुमेंउ सहकारे-सहकारे।
ऋद्धि गयेउ कोकनद करकहं। हंसा हंसे कुवलय कु-वलय।
मधुकर मधु मज्जंते यांते। कोकिल वासंतें वासंतें।
कीर-वंदि उड्डंते ठंते। मलयानिल आवंते-वंते।

मधुकरि प्रतिसंलापै लापै। जहं नव-तीतरियें तीतरये।
नाम न नावै किंशुकि किं-सुकि। ज्ञाँह वशेहि गजनाथहं नाथहं।
तहं तनु तप्पै सीतहं शीते।
आछेउ सामान्ये कौनहुं अन्ये, जहं अतिमुक्तउ रति करइ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ॥
कहिं कहिं अंगारक-संकाशा। राजै तामरु फुल्ल पलाशा।
जनु दावानल आइ गवेषा। "को मैं दाहु न दाहु प्रदेशा"।
कहि कहि माधविया निज मंदिर। जोउ निवारेउ इंदिदिरू।
ऊसर ऊस ऋतहुं अपवित्रा। अन्ये नव पुष्पवतिएं क्षिप्तउ।
कहि कहि मूक कुसुम-मंजरिया। न्याइं वसंत वडापउ धरिया।
कहि कहि पवनाहत पुन्नागा। जनु जग ऊछल्लेंउ पुं-नागा।
कहि कहि अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ। रहेंउ वसंत-सिरिहि इव कुरूलउ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा। सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा।

देश-वर्णन

अपभ्रंशेंउ खल-जन-अनवशेष। पहिलेंउ मैं वर्णउँ मगह-देश।
जहँ पक कमल-कमलिनि निषण्ण। अलभंत तरणि थिरवहिं विषण्ण।
जहँ शुक-पंक्तिउ सुपरि-स्थिताव। जनु वन-श्री-मरकत-कंठियाव।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता। कंपत इव पेलन-भय-भीता।
जहँ नंदन-वने मनोहरा। नाचत इव चल-पल्लव-करा।
जहँ फाटें वदन दाडिमा। दीखत से वे जनु कपि-मुखा।
जहँ मधुकर-पंक्तिउ सुंदराइं। केतकि-केसर-रज-धूसराइँ।
जहँ दाखा-मंडप परिचलहीं। पुनि पंथिक रस-सलिलहि पियहीं।

समुद्र-वर्णन

निर्दलेंउ भुजंग विसर्ग मोचु। मोचत जनु वर-सागरहिं ढूकु।
ढूकत हि बहु स्फुलिंग क्षिप्त। घन-सीप-शंख-संपुट-प्रलिप्त।
धग-धग-धगंत मुक्ताफला। कड-कड कडंत सागर जला।
हस हस हसंत पुलिनांतरा। ज्वल ज्वल ज्वलंत भुवनांतरा।
संचल्लेंउ राघव साधन सँग। सँघट्टेंउ वाहन वाहन सँग।
थोडान्तरे देखु महासमुद्र। सूँस अवर मकर जलचरेंहि रौद्र।
मत्स्योधर नाका गोह घोर। कल्लोलावंत तरंग जोर।
बेलहि बर्धंतउ दुह दुहंत। फेनुज्ज्वल तोय तुषार देंत।
तेंहि ऊपर पहुँचेंऊ राम सेन। जनु मेघजाल नभ तलें निषण्ण।
मन गतिहि गगनें चलंतऊ, लख्खेऊ लवण समुद्र किमि।
महि मंडल नभ तल राक्षसेंहि, फाड़ेंउ जठर प्रदेश जिमि॥
दीसइ रत्नाकर रतन चारु। विष्णु'व सवारि छंदि'व सगाथ।
अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल। भंडारी इव वहु रतन पाल।
सु भव पुरुष इव सलोन शील सुग्रीवि'व प्रकटेंऊ इन्द्र नील।
जिनसुत चक्रवर्ति'व कियेंऊ शैल। मध्यान्हि'व ऊपर चढेंऊ बेल।
तपसी इव पालेंऊ समय सार। दुर्जन पुरुष इव स्वभाव खार।
निर्धन अलाप इव अ प्रमाण। जोतिसि 'व मीन कर्कटक थान।
महकव्य निबँध इव शब्द गहिर। चामीकरि'व शयित पीत मकर।
तहँ जलनिधिहू लंघंतयेहु। वोहितऊ देखेऊ जांतएहु।
सिंह बटहि लंबित फलाउ। महऋषि चित्ता इव अविचलाउ।

जन्मभूमि

धूवंत धवला ध्वज वट प्रवरू। प्रियें! पेखु अयोध्यापुरि नगरू।
फुरु जन्म भूमि जननीहि सम, आन विभूषित जिनवरेहिं।
पुरि वंदि सिर स्वयंभू करेहि, जनकतनय हरि हलधरेहिं।

भाषा-विज्ञान की यह स्थिर मान्यता है कि मानव की विविध शारीरिक और मानसिक शक्तियों के अनुरूप उसकी वाक्-शक्ति का प्रादुर्भाव ही भाषा है, और वह अपनी प्रकृति से ही विकासोन्मुखी है। यह विकास अपने प्राकृतिक रूप में कभी सहसा नहीं होता, वरन् क्रमोन्नत होता है, इसीलिए आज के पुरावृत्त अन्वेषण में अन्य आधारों के साथ ही भाषा वैज्ञानिक आधार विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। किसी जाति की सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य की प्राचीन विभूति के अज्ञात काल निर्णय को स्थिर करने में भाषा-वैज्ञानिक आधार अन्य आधारों की अपेक्षा अधिक सहायक सिद्ध होता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास का भाषा-वैज्ञानिक क्रम शताब्दियों पूर्वके ख्याति-प्राप्त किन्तु अज्ञात काल लेखकों के विषय में काल-विषयक आधारयुक्त प्रमाण उपस्थित कर सकता है। केवल इतना ही नहीं, इसी के माध्यम से हम अपने प्राचीन साहित्य की विविध खोई हुई कड़ियों को जोड़ने में भी समर्थ होते हैं, क्योंकि यह भी एक निश्चित अनुभव-जन्य मान्यता है कि जब तक कोई भाषा पर्याप्त पुष्ट नहीं हो जाती, तब तक उसमें कलात्मक साहित्य के विविध रूपों की सृष्टि संभव नहीं होती। इस दृष्टि से प्राप्त साहित्य के रूपों को देख कर हम भाषा के क्रमिक विकास तथा मानवके मानसिक विकास में स्थित पारस्परिक समन्वय का अध्ययन सहज ही कर लेते हैं, और कब किस साहित्यिक रूप की सृष्टि क्यों और कैसे हुई होगी—इसका अनुमान भी कर सकते हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन से न केवल प्राचीन साहित्य का मर्म ही अधिक स्पष्ट होता है, वरन् उस काल की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। भूत ही वर्तमान का आधार होता है और वर्तमान में भविष्य का संकेत मिलता है, यही युगों के जीवन का अनुभव है,

जिसका परिचय साहित्य के माध्यम से ही सुलभ होता है। इसे साहित्य का महत्त्व कहते हैं।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरण इन्हीं सर्वमान्य सिद्धान्तों के प्रमाण हैं जिनमें हमें हिन्दी भाषा के कतिपय आंचलिक विकास-क्रम की सूचना के साथ ही भारतीय विकासोन्मुखी मनीषा के दर्शन होते हैं, और उन्हीं मे हम प्रायः विस्मृत अथवा अज्ञात जीवन का परिचय भी प्राप्त करते हैं। किन्तु मध्य काल के नाम से प्रसिद्ध जिस भारतीय चिन्ता-धारा का परिचय हमें विविध सन्तों, भक्तों और उपासकों की वाणी में प्राप्त होता है तथा रीतिकाल के नाम से पुकारे जाने वाले ऐतिहासिक काल में जिन विविध कलात्मक काव्यरूपों का परिचय हमें केशव, देव और बिहारी इत्यादि की रचनाओं में मिलता है, इनकी विस्मृत-सी कड़ी ढूंढ़ निकालने में निश्चय ही हमारा रासो साहित्य सहायक सिद्ध होगा क्योंकि भाषा के ही समान साहित्य भी अपनी प्रकृति से ही सहज विकास-शील होता है, इसमें भी सहसा नवरूपोंकी सृष्टि संभव नहीं होती। साहित्य का अविच्छिन्न संबंध जीवन से है। निखरे हुए जीवन का कलात्मक प्रतिबिम्ब ही काव्य के दर्पण में झलकता है। रासो साहित्य के कतिपय उदाहरण इसके प्रमाण हैं—

उदाहरण स्वरूप पृथ्वीराज रासो के कुछ छन्द उद्धृत किए जा रहे हैं—

वसन्त—मवरि अंव फुल्लिग, कदंब रयनी दिघ दीसं।
भवंर भाव भुल्लै, भ्रमंत मकरंदब सीसं।
वहत बात उज्जलति, मौर अति विरह अगनि किय।
कुह कुहंत कल कंठ, पत्र राषस रति अग्गिय।
पय लग्गि प्रानपति बीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटै, कंत बसंत न गम करहु।

ग्रीष्म—दीरघ दिन निस हीन, छीन जलधर बैसंनर।
चक्रवाक चित मुदित, उदित रवि थकित पंथ नर।
चलत पवन पावक, समान परसत सु ताप मन।
सुकत सरोवर मचत, कीच तलफंत मीन तन।
दीसंत दिगम्बर सम सुरत, तरु लतान गय पत्त झरि।
अक्कुलं दीह संपति विपति, कंत गमन ग्रीषम न करि।

वर्षा—अब्दे बद्दल मत्तमत्त विषया दामिन्य दामायते।
दादूरं दर मोर सोर सरिसा पप्पीह चीहायते।
शृंगारीय वसुंधरा मलिलता लीला समुद्रायते।
जामिन्या सम बासुरो विसरता पावस्स पंथानते।

शरद—पिष्पि रयन त्रिमलिय, फूल फूलंत अमर धर।
श्रवन सबद नहिं सुझै, हँस कुरलंत मान सर।
कवल कद्रव विगसंत, तिनह हिमकर परजारै।
तुमहिं चलत परदेसे, नहीं कोइ सरन उबारै।
निग्रहन रत्त भर पञ्च सर, अरि अनंग अंगै बहै।
जौ कंत गवन सरदै कहै, तौ विरहिनि सिष ह्वै दहै।

हेमंत—छिन्नं बासुर सीत दिघ्घ निसया सीतं जनेतं बने।
सेज सज्जर बानया बनितया आनंग आलिंगने।
यों बाला तरुनी वियोग पतनं नलिनी हिमंते हिमं।
मा मुक्के हिमवंत मन्त गमने प्रमदा निरालम्बनं।

शिशिर—रोमाली बन नीर निद्ध चख्यो गिरिदंग नारायने।
पब्बय पीन कुचानि जानि मलया फुंकार झंकारए।
सिसिरै सर्वरि वारुनी च विरहा माहद्द मुब्बारए।
मा कंते त्रिगबद्ध मध्य गमने किं दैव उच्चारए।

आगम फाग अवंत, कंत सुनि मित्त सनेही।
सीत अन्त तप तुच्छ, होइ आनन्द सब ग्रेही।
नर नारी दिन रैनि, मैन मदमाते डुल्लैं।
सकुच न हिय छन एक, वचन मनमाने बुल्लैं।
सुनौ कंत सुभ चिंत करि, रयनि गवन किम कीजइय।
कहि नारि पिय बिन कामिनी, रिति ससिहर किम जीजइय

वीसल देव रासो से—

कूँवर कहई "सुणी! साभस्या राव!।
कांई स्वामी तुं उलगई जाई?॥
कह्यउ हमारुउ जइ सुणउ।
थारइ छइ साठि अंतेवरी नारि"॥
कर जोड़े धन वीनवइ।
"राज कुंवरी निति भोगवि राय"॥
रावइ कहइ "सुणी! राजकुंमारि।
दूमनी काई हीयउइ बर नारि॥
कह्यउ हमारो जउ सुणइ।
आंणिसु कोड़ि — टकाउल — हार॥
देत उड़ीसइ गम करूँ।
जाई जुहारूं जादव राई"॥
"रहि रहि राव ओलगी तू जाई।
माहरी गइली तुं करह पठाई॥
जाईस पीहर आपणइ।
आंणिसु अरथ नइ दरब भंडार॥
आणि सूं हीरा पाथरी।
मांडव सरसीहु आणि सूं धार"॥

"रहि रहि मूरख न बोलि अयाण।
कउण देसी तोहि मडव धार ?॥
कहउ हमारउ जै सूणई।
जइ धणां रह हस्यां तो मास विच्यार॥
देव जुहारे आवस्यां।
आवौऊं सास पसार मां राजकुंमार॥
मइ धणी! थार मिल्हीय आस"।
"मइला राजा थारउ कीसउ हो वेसास।
तो हूं दासी करि गीणी।
सगा सुणी जी मांहि ना गमीमा॥
जीवत ही मुआं बड़इ
बाल्हूं लोभी हूँ थारा दाम।"

प्रस्तुत संग्रह में विद्यापति से लेकर घनानंद तक १७ हिन्दी के अति प्रसिद्ध भक्त, साधक, उपासक, तथा आचार्य और कवियों की कृतियों के कुछ चुने हुए उद्धरण संग्रहीत हैं। विद्यापतिका काल १४वीं शताब्दी का उत्तरार्ध प्रायः स्वीकृत है और घनानंद का १७ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध। लगभग सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर १४ वीं शताब्दी तक देश के विविध अंचलों में हिन्दी के विविध रूपों का विकास कितना अधिक हो चुका था, इसका परिचय इन विविध उद्धरणों से भलीभाँति मिल सकता है। भारतीय मनीषा के ये प्रतिनिधि अपनी कृतियों में केवल भाषा की प्रौढ़ताका ही परिचय नहीं देते वरन् इनकी रचनाओं में विकसित भारतीय प्रतिभा भी सुरक्षित होकर अमरता प्राप्त कर चुकी है। इनकी कृतियां इसका स्पष्ट प्रमाण हैं कि लगभग

१४ वीं अथवा १५ वीं शताब्दी से हमारे मनस्वी विचारक और कलाकार अपनी विविधोन्मुखी मानसिक अभिव्यक्ति के लिये हिन्दी को ही अपना चुके थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस काल में या इसके बाद भी संस्कृत में रचनाएँ नहीं की जाती थीं किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अपेक्षाकृत हिन्दीकी लोकप्रियता दिनोदिन अधिक व्यापक देख पड़ती है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। लोक-जीवन में हिन्दी का मातृभाषा और साहित्यिक भाषा के रूप में अतिव्यापक प्रवेश तथा उसकी अपनी शक्ति और समृद्धि शायद प्रधान कारण मानना पड़ेगा। हृदय की सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर सकना, तथा गंभीर विचारों को स्वर दे सकना यही किसी भी समुन्नत भाषा की शक्ति के आधार हुआ करते हैं। बंग की पश्चिमी सीमा से पंजाब तक तथा हिमालय की तराई से लेकर विंध्यशिखर के उत्तरी भाग में फैला हुआ अपार जन-समूह जो युगों से भारतीय संस्कृति, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान का उत्तराधिकारी रहा है, उसके मानस पटल पर कैसे कैसे सूक्ष्म तथा जटिल विचार प्रतिबिम्बित होते रहे होंगे; उसके सुसंस्कृत हृदय में कितने प्रकार की कोमल भावनाएँ स्फुरित होती रही होंगी, इसका लेखा-जोखा कौन ले सकता है? उन सबकी अभिव्यक्ति का माध्यम शताब्दियों से हिन्दी ही रही है। ऐसी वाणी की शक्ति और उसकी क्षमता स्वयं सिद्ध है। इस भाषा के विकास का इतिहास देववाणी के विकास का इतिहास है। हिन्दी के साहित्य का इतिहास भारतीय संस्कृति, कला और ज्ञान के विकासका इतिहास है। उसका थोड़ा-सा परिचय देना ही इस छोटे से संग्रह का उद्देश्य है।

—::o::o::—

विद्यापति

—::०::०::—

वन्दना

नन्द क नन्दन कदम्ब क तरु तर
धिरे धिरे मुरली बजाव।
समय संकेत-निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव॥
सामरि तोरा लागि
अनुखन बिकल मुरारि॥
जमुना क तिरे उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि।
गोरस बेंचए अवइत जाइत।
जनि जनि पुछ बनमारि॥
तोहें मतिमान, सुमति मधुसूदन
बचन सुनत किछु मोर।
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
बन्दह नन्द - किशोर॥ १॥

—::०::०::—

राधा वन्दना

—::o::o::—

देख देख राधा रूप अपार
अपुरबके बिहि आनि मिलाओल
खिति तक लखनि सार ॥
अंगहि अंग अनंग मुरछायत
हेरए पड़ए अधीर।
मनमथ कोटि-मथन करू जे जन
से हेरि महि-नधि गीर ॥
कतकत लखिमी चरन-तल नेओछए
रंगिनि हेरि बिभोरि।
करु अभिलाष मनहि पद पंकज
अहो निसि कोर अगोरि ॥ २ ॥

वसन्त

—::o::o::—

माघ मास सिरि पंचमी गंजाइलि
नवम मास पंचम हरुआई।
अति घन पीड़ा दुख बड़छाओल
वनस्पति भेलि धाई हे ॥
सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख हे
दिन कर उदित समाई।
सोरह सम्पुन बतिस लखन सह
जनम लेल ऋतुराई हे ॥
नाचए जुवति जना हरखित मन
जनमल बाल मधाई हे।

मधुर महारस मंगल गावए
मानिनि मान उड़ाई हे।
बह मलयानिल ओत उचित हे
नव घन भओ उजियारा।
माधवि फूल भेल मुक्ता तुल
ते देल बन्दन बारा ॥
पीअरि पांडरि महुअरि गावए
काहर कार धतूरा।
नागेसर - कलि संख धूनि पूर
नकर ताल समतूरा॥
मधु लए मधुकर बालक दएहलु
कमल — पंखरी — लाई
पओनार तोरि सूत बांधल कटि
केसर कएलि बधनाई।
नव नव पल्लव सेज ओछाओल
सिर देल कदम्बक माला।
बैसलि भामरि हरउद गाबए
चक्काचन्द निहारा॥
कनअ केसुअ सुति-पत्र लिखिए हलु
रासि नछत कए लोला।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए
रितु वसन्त नाम धओला॥ १॥

२

बाल वसंत तरुन भए धाओल
बढ़ए सकल संसारा
दखिन पवन घन अंग ओगारए
किसलय कुसुम परागे।
सुललित हार मजरि घन कंजल
अखितौं अंजन लागे॥
नव वसंत ऋतु अगुसर जौबति
विद्यापति कवि गावे।
राजा शिव सिंघ रूप नरायन
सकल कला मन भावे॥ २॥

३

आएल ऋतुपति राज वसंत।
धाओल अलिकुल माधव पंथ।
दिन कर-किरन भेल पौगंड,
केसर कुसुम धएल हेमदंड॥
नृप - आसन नव पीठल पात
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ॥
मौलि रसाल - मुकुल भेल नाम।
समुखही कोकिल पंचम गाय॥
सिखिकुल नाचत अलि कुल यंत्र।
द्विज कुल आन पढ़ आसिख मंत्र॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग।
मलय बनन सह भेल अनुराग॥

कुन्द बल्लि तरु धएल निसान।
पाटल तून असोक दलवान॥
किंसुक लवंग लता एक संग।
हेरि सिसिर रितु आगे दल भंग॥
सैन साजल मधु मखिका कूल।
सिरिरक सबहु कएल निरमूल॥
उधारल सरसिज पाओल प्रान।
निजनव दल करू आसन दान॥
नव बृन्दावन राज विहार।
विद्यापति कह समयक सार॥ ३॥

नव बृन्दावन नव नव तरुगन
नव नव विकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अलि कूल॥
विहरई नवल किसोर
कालिन्दीपुलिन कुञ्जवन सोभन।
नव नव प्रेम - विभोर॥
नवल रसाल - मुकुल - मधु मातल
नव कोकिल कुल गाय।
नव जुवती गन चित उमता अई
नवरस कानन धाय॥
नव युवराज नबल बरनागरि
मिलए नब नब भांति।
निति निति ऐसन नब नब खेलन
विद्यापति मति माति॥ ४॥

—::०::—

कबीर

१

अब तोहि जान न देहूं रामं पियारे,
ज्यूँ भावे त्यूँ होह हमारे ।।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठें आये ।।
चरननि लागि करौं बरिआई, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ।।
इत मन मन्दिर रहौ नित चौषै, कहे कबीर परहु मति धोषै ।।

२

चलन चलन सबकोऊ कहत है, नां जानौं बैकुंठ कहां है ।।
जोजन एक प्रमिति नहीं जानैं, बातनि हीं बैकुण्ठ बषानैं ।।
जब लग है बैकुण्ठ की आसा, तब लग नहिं हरि चरन निवासा ।
कहें सुनें कैसें पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये ।।
कहै कबीर यहु कहिये काही, साध संगति बैकुण्ठहिं आहि ।।

३

दास रांमहिं जानि है रे, और न जानैं कोइ ।।
काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन मांहि बिनांन ।
जिनि लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवांन ।।
बहुत भगति भौसागरा, नांनां विधि नांनां भावा
जिहि हिरदै श्रीहरि भेटिया, सो भेद कहूं कहूँ ठाउं ।।
दरसन संमि का कीजिये, जौ गुन नहीं होत समांन।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिले पखान ।।

४

जस तूं तस तोहि कोई न जांन
लोग कहैं सब आनहि आंन ॥
चारि वेद चहूँ मत का विचार, इहि भ्रंमि भूलि पर्‌यौ संसार ॥
सुरति सुमृति दोइ कौ विसवास, वाझि पर्‌यौ सब आसा पास ॥
ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरौ धूँका मैं का कर ॥
जिहि तुम्ह तारौ सोई मैं तिरई, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई ॥

५

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूं सब।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कोई कहौ रामं राई हो ॥
नां हम बार बूढ़ नाही हम, नां हमरे चिल्काई हो।
पठए न जांऊँ अरवा नहीं आंऊँ, सहजि रहुं हरिआई हो ॥
बोढन हमरे एक पछेवरा, लोक बोलें इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पांन न पावल, फारि बुनी दस ठांई हो ॥
त्रिगुंण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारौ नांउं रांम राई हो।
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥

६

काहे रे नलनीं तूं कुमिलांनी,
तेरे ही नालि सरोवर पांनी ॥
जल मैं उतपति जल मैं वास, जल मैं नलनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदित समांन, ते नहीं मूए हंमारे जान ॥

७

मन रे तन कागद का पुतला ।
लागे बूँद बिनसि जाइ छिन में, गरब करै क्या इतना ॥
माटी खोदहिं भीत उसारै, अंध कहै घर मेरा ।
आवै तलब बांधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा ॥
खोट कपट करि यहु धन जोर्यो, लै धरती में गाड्यौ ॥
रोक्यौ घटि सास नहीं निकसै, ठौर ठौर सब छाड़्यौ ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौन बजावै ।
गये पषनियां उभरी वाजी, को काहू के आवै ॥

८

मन रे कागद कीर पराया ।
कहा भयौ व्यौपार तुम्हारै, कल तर बढ़ै सवाया ॥
बड़े बौहरे सांठा दीन्हीं, कल तर काढ्यौ खोटे ।
चार लाख अरू असी ठीक दे, जनम लिष्यौ सब चोटे ॥
बवकी बेर न कागद कीर्यौ, तो धर्म राह सं तूंटै ।
पूंजी बितड़ि बंदि लै दैहै, तब कहै कौन कै छूटै ॥
गुरदेव ग्यानी भयौ लसनियां, सुमिरन दीन्हों हीरा ।
बड़ी निसरनी नांव रांम कौ, चढ़ि गयो कीर कबीरा ॥

९

हरि जननीं मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।
सुत अपराध करै दिन केते, जननीं के चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

१०

माधो मैं ऐसा अपराधी, तेरी भगति हेत नहीं साधी।
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचुपाया॥
भौ जल तिरण चरण च्यंतामंणि, ता चित घड़ी न लाया।
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादें सूरा॥
ताथैं आवागमन होइ पुनि, ता पर संग न चूरा।
कांम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हंम मांही॥
दया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए प्रभू सुपिनैं नांही॥

११

माधो चले बुनांवन माहा, जग जीतै जाइ जुलाहा।
नव गज दस गज गज उगनींसा, पुरिया एक तनाई॥
सात सूत दे गंड बहतरि, पाट लगी अधिकाई।
तुलह न तौली गजह न मापी, पहजन सेर अढाई॥
अढ़ाई में जे पाव घटै तौ, करकस करै बजहाई।
दिन की बैठि खसम सूं कीजै, अरज लगी तहाँ ही॥
भागी पुरिया घर ही छाड़ी, चले जुलाह रिसाई।
छौछी नलीं कांमि नहीं आवे, लहटि रही उरझाई॥
छांडि पसारा रांम कहि बौरे, कहै कबीर समझाई॥

१२

माया मोहि मोहि हित कीन्हां, ताथैं मेरौ ग्यांन ध्यान हरि लीन्हां।
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन॥
सांच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाडि परम निधांन।
नैन नेह पतंग हुलसै, पसू न पेखै आगि॥

काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक कामिनी लागि।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ॥
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांही कोइ।

१३

अन्धे हरि बिन को तेरा, कवन सूं कहत मेरी मेरा।
तजि कुलाक्रम अभिमानां, झूठे भरमि कहाँ भुलानां॥
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमिष मांहि जरि जाई।
जब लग मनहि बिकारा, तब लगि नहीं छूटै संसारा॥
जब मन निरमल मरि जानां तब निरमल मांहि समानां।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई॥
जब पाप पुंनि भ्रंम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी।
कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैसा॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई, राजा राम करै सो होई।

१४

मन रे जब तैं राम कह्यो, पीछे कहिबे को कछु न रह्यो।
का जोग जगि तप दांनां, जौ तैं राम नाम नहीं जांनां॥
काम क्रोध दोऊ मारे, ताथैं गुरू प्रसादि सब जारे।
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा साम मिले अबिनासी॥

१५

राम राइ सो गति भई हमारी, मो पैं छूटत नहीं संसारी।
ज्यूं पंखी उड़ि जाइ अकासां, आस रही मन मांही॥

छूटी न आस टूट्यौ नहीं फंदा, उडिबौ लागौ कांहीं।
जो सुख करत होत दुख तेई, कहत न कछू बनि आवै॥
कुंजर ज्यूं कसतूरी का मृग, आपै आप बंधावै।
कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी॥
इत भैमीत डरौं जम दूतनि, आये सरन तुम्हारी।

१६

नैंक निहारि हो माया विनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरै, फुनि फुनि पाइ परै॥
कनक लेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन-हरनीं।
पुत्र लेहु विद्या-अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं॥
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां, नवै निधि है तुम्ह आगैं।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मांग॥
तैं पापणीं सबै संघारे, काकौ काज संवार्यौ।
जिनि जिनि संग कियौ है तेरौ, कौ बैसासि न मार्यौ॥
दास कबीर रांम कै सरनैं, छाडी झूठी माया।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहाँ परम पद पाया॥

१७

माधौ कब करिहौ दया।
कांम क्रोध अहंकार ब्यापै, नां छूटे माया॥
उतरति ब्यंद भयौ जा दिन थैं कबहूं सच नहीं पायौ।
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गंवायौ॥
तन पन डस्यौ भुजंग भांमिनीं, लहरी वार न पारा।
सो गारड्ड मिल्यौ नहीं कबहूं, पसर्यौ विष बिकराला॥
कहै कबीर यहु कासूँ कहिये, यहु दुख कोइ न जानैं।
देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मानैं॥

१८

अरे परदेसी पीव पिछांनि ।
कहा भयौ तौकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि ॥
भौमि बिडाणि मैं कहा रातौ, कहा कियौ कहि मोहि ।
लाहे कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तौहि ॥
निस दिन तौहि क्यूँ नींद परत है, चितवत नांही ताहि ।
जंम से बैरी सिर परि ठाढे, पर हाथि कहा बिकाइ ॥
झूठे परपंच मैं कहा लागौ, उठै नांहीं चालि ।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौनैं देखी काल्हि ॥

१६

आऊँगा न जांऊँगा, मरूंगा न जीऊंगा ।
गुरू के सबद मैं रमि रमि रहूंगा ॥
आप कटोरा आपैं थारी, आपैं पुरिखा आपैं नारी ॥
आप सदाफल आपैं नींबू, आपै मुसलमांन आपैं हिन्दू।
आपैं मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपैं काल ॥
कहै कबीर हम नांही रे नांही, नां हंम जीवत न मुक्ले मांहीं ॥

२०

लोग कहैं गोबरधनधारी, ताकौ मोहि अचम्भौ भारी ।
अष्ट कुली परबत जाके पग की रैंनां, सातौं सायर अंजन मैंनां ॥
ऐ उपमां हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहैं न साखी ॥
सिव बिरंचि नारद जस गावें, कहै कबीर वाको पार न पावैं।

—::o::o::o::—

जायसी

—::०::०::—

प्रेम-खंड

सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई॥
पेम-घाव-दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई॥
परा सो पेम-समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ विसंभारा॥
बिरह-भौंर होइ भांवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई॥
खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई॥
खिनहिं पीत, खिन होइ मुख सेता। खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें पेम-बेवस्था। ना जिउ जिये, न दसवं अवस्था॥

जनु लेनिहार न लेहिं जिउ, हरहिं तरासहिं ताहिं।
एतनै बोल आव मुख, करैं तराहि तराहि॥ १॥

जहं लगि कुटुम्ब लोग औ नेगी। राजा राय आए सब वेगी॥
जाबत गुनी गारुड़ी आए। ओझा, बैद, सयान बोलाए॥
चरचहिं चेष्टा परिखहिं नारी। नियर नाहिं ओषद तहं बारी॥
राजहिं आहि लखन कै करा। सकति-कान मोहा है परा॥
नहिं सो राम, हनिवंत बड़ि दूरी। को लेइ आव सजीवन-मूरी॥१॥
विनय करहिं जे जे गढ़पती। का जिउ कीन्ह, मौन मति मती॥१॥
कहहु सो पीर, काह पुनि खांगा? समुद सुमेरु आव तुम्ह मांगा॥

धावन तहाँ पठावहु, देहिं लाख दस रोक।
होइ सो बेलि जेहि बारी, आनहिं सबै बरोक॥२॥

जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौं सोइ उठि जागा॥
आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ'॥
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहां मरनपुर आएउँ कहा॥१॥
केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हंकारि जीउ हरि लीन्हा॥
सोवत रहा जहाँ सुख-साखा। कस न तहाँ सोवत बिधि राखा?
अब जिउ उहाँ, इहाँ तन सूना। कब लगि रहै परान-बिहूना॥
जौ जिउ घटहि काल के हाथा। घट न नीक पै जीउ-निसाथा॥

अहुठ हाथ तन-सरवर, हिया कवंल तेहि मांह।
नैनहिं जानहु नीयरे, कर पहुंचत औगाह॥३॥

सबन्ह कहा मन समुझहु राजा। काल सेंति कै जूझ न छाजा॥
तासौं जूझ जात जो जीता। जानत कृष्ण तजा गोपीता॥
औ न नेह काहू सौं कीजै। नांव मिटै, काहे जीउ दीजै॥
पहिले सुख नेहहि जब जोरा। पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा।
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू। पहुंचि न जाइ परा तस फेरू॥
ज्ञान-दिस्टि सौं जाइ पहूंचा। प्रेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा॥
ध्रुव तें ऊँच पेम-धुव ऊआ। सिर देइ पांव देइ सो छूआ॥

तुम राजा औ सुखिया, करहु राज-सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुँचै सहै जो दुःख वियोग॥४॥

सुए कहा मन बूझहु राजा । करब पिरीत कठिन है काजा ।।
तुम राजा जेईं घर पोई । कवंल न भेंटेउ, भेंटेउ कोई ।।
जानहिं भौंर जौ तेहि पथ लूटे । जीउ दीन्ह औ दिए न छूटे ।।
कठिन आहि सिंघल कर राजू । पाइय नाहिं जूझ कर साजू ।।
ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी । जोगी, जती, तपा, सन्यासी ।।
भोग किए जौं पावत भोगू । तजि सो भोग कोइ करत न जोगू ।।
तुम राजा चाहहु सुख पावा । भोगहि जोग करत नहिं भावा ।।

साधन्ह सिद्धि न पाइय जौ लगि सधै न तप्प ।
सो पै जानै बापुरा करै जो सीस कलप्प ।। ५ ।।

का भा जोग-कथनि के कथे । निकसै घिउ न बिना दधि मथे ।।
जौ लहि आप हेराइ न कोई । तौ लहि हेरत पाव न सोई ।।
पेम-पहार कठिन बिधि गढ़ा । सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा ।।
पंथ सूरि कै उठा अंकूरू । चोर चढ़ै, की चढ़ मंसूरू ।।
तू राजा का पहिरसि कंथा । तोरे घरहि मांझ दस पंथा ।।
काम, क्रोध, तिस्ना, मद माया । पाँचौ चोर न छाँड़हि काया ।।
नवौ सेंध तिन्ह कै दिठियारा । घर मूसहिं निसि, की उजियारा ।।

अबहू जागु अजाना, होत आव निसि भोर ।
तब किछु हाथ न लागहिं मूसि जाहिं जब चोर ।।६।।

सुनि सो बात राजा मन जागा । पलक न मार, पेम चित लागा ।।
नैनन्ह ढरहि मोति औ मूंगा । जस गुर खाइ रहा होइ गूंगा ।।
हिय कै जोति दीप वह सूझा । यह जो दीप अंधियारा बूझा ।।
उलटि दीठि माया सौं रूठी । पलटि न फिरी जानि कै झूठी ।।

जो पै नाहीं अहथिर दसा। जग उजार का कीजिय बसा ।।
गुरु बिरह-चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।।
अब करि फनिग भृंग कै करा। भौंर होहुँ जेहि कारन जरा ।।
फूल फूल फिरि पूछौं जौ पहुंचौं ओहि केत।
तन नेवछावरि कै मिलौं ज्यों मधुकर जिउ देत ।'७।
बन्धु मीत बहुतै समुझावा। मान न राजा कोउ भुलावा ।।
उपजी पेम-पीर जेहि आई। परबोधत होइ अधिक सो आई।।
अमृत बात कहत विष जाना। पेम क बचन मीठ कै माना ।।
जो ओहि विषै मारि कै खाई। पूछहु तेहि सन पेम-मिठाई ।।
पूंछहु बात भरथरिहि जाई। अमृत-राज तजा विष खाई ।।
औ महेस बड़ सिद्ध कहावा। उनहूँ विषै कंठ पै लावा ।।
होत आव रवि-किरिन बिकासा। हनवंत होइ को देइ सुआसा।।
तुम सब सिद्धि मनावहु होइ गनेस सिधि लेव।
चेला को न चलावै तुलै गुरू जेहि भेव ? ।। ८ ।।

—::o::o::—

सूरदास

मंगलाचरण

—::o::o::—

चरण-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे को सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥ १॥

सगुणोपासना

—::o::o::o::—

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥ २॥

बाल-क्रीड़ा

—::o::o::—

करतल-सोभित बान धनुहियां।
खेलत फिरत कनकमय आंगन, पहिरे लाल पनहियाँ।
दसरथ-कौसिल्या के आगें, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौं चारि हंस सरवर तें बैठे आइ सदेहियाँ।

रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनंद-निधि सब कहियाँ।
यह सुख तीनि लोक में नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ॥ ३ ॥

बाल-लीला

—::o::o::—

पालनैं गोपाल झुलावैं।
सुर-मुनि-देव कोटि तैं तीसौ, कौतुक अंबर छावैं।
जाकौ अन्त न ब्रह्मा जानै, सिवसनकादि न पावैं।
सो अब देखौ नंद-जसोदा, हरषि-हरषि हलरावैं।
हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावैं।
सूर स्याम भक्तनि हित कारन, नाना भेष बनावैं॥ ४ ॥

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नंद-घरनी
उमंगि-उमंगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी॥ ५ ॥

खीझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात।
कबहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुं झुकि कै अलक खैंचत, नैन जल भरि जात।
कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात॥ ६

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद कैं आंगन, बिंब पकरिबैं धावत ।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाहं कौं, कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हंसत राजत द्वै दतियां, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति ।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा, कमल बैठकी साजति ।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति ।
अंचरा तर लै ढांकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ॥ ७ ॥

भीतर तैं बाहर लौं आवत ।
घर-आंगन अति चलत सुगम भए, देहरि अंटकावत ।
गिरि गिरि परत, जात नहिं उलंघी, अति स्रम होत नघावत ।
अहुंठ पैग वसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत ।
मनहीं मन बलबीर कहत हैं, ऐसे रंग बनावत ।
सूरदास-प्रभु-अगनित-महिमा, भगतनि कैं मन भावत ॥ ८ ॥

नंद जू के बारे कान्ह, छांड़ि दै मथनियां ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नंदरनियां ।
नैंकु रहौ माखन देऊं मेरे प्रान - धनियां ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउं हौं निधनियां ।
जाकौ ध्यान धरैं सबै, सुर-नर-मुनि जनियां ।
ताकौ नंदरानी मुख चूमै लिए कनियां ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियां ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप - धनियां ॥ ९ ॥

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौं बाबा-बाबा, अरु हलधर सौं भैया।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि कहति जसोदा, लै लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चरननि की बलि जैया॥ १० ॥

सखि री, नंद-नंदन देखु।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किये हर-भेष।
नील पाट पिरोह मनि-गन फनि धोखैं जाइ।
खुनखुना कर, हसंत हरि, हर नचत डमरु बजाइ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ।
मुंडमाला मनौं हर-गर ऐसी सोभा पाइ।
स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन इहिं भाइ।
मनौ गंगा गौरि-डर हर लई कंठ लगाइ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि।
बाल-ससि मनु भालु तैं लै, उर धर्यौ त्रिपुरारि।
देखि अंग अनंग झझक्यौ, नंद सुत हर जान।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याम-सिव को ध्यान॥ ११

मैया, मैं तो चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं
ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं।
हंसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं॥ १२ ।

खेलन अब मेरी जाइ बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकनि संग तबहिं खिझत बल भैया।
मोसौं कहत तात बसुदेव कौ, देवकि तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै करि तिनकौं, करि-करि जतन बढ़ैया।
अबु बाबा कहि कहत नंद सौं, जसुमति सौं कहै मैया।
ऐसैं कहि सब मोहि खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया।
पाछैं नंद सुनत हे ठाढ़े, हंसत हंसत उर लैया।
सूर नंद बलरामहिं धिरयौ, तब मन हरष कन्हैया॥ १३॥

जेंवत कान्ह नन्द इकठौरे।
कछुक खात लपटात दोउ कर बालकेलि अति भोरे।
वरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूंकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अंकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै, कीन्हे तात निहोरे॥ १४॥
खेलत मैं को काकौ गुसैयां।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैया।
जाति-पांति हमतैं बड़ नांहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।
अति अधिकार जनावत यातैं जातैं अधिकतुम्हारैंगैयां।
रूहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहं-तहं सब गैयां।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउं दियौ करि नंद-दुहैयां॥ १५॥

नैंकु गोपालहिं मोकौं दै री।
देखौं बदन कमल नीकैं करि, ता पाछैं तू कनियां लै री।
अति कोमल कर-चरन-सरोरूह, अधर-दसन-नासा सोहै री।
लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि वारनैं गै री।

बासर-निसा बिचारति हौं सखि, यह सुख कबहुं न पायौ मैं ।।
निगमनि-धन, सनकादिक-सरवस, बड़े भाग्य पायौ है तैं री।
जाकौ रूप जगत के लोचन, कोटि चंद्र-रवि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा, गोपिनि-प्रान, पूतना-बैरी ।। १ ।।

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भांति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति ।।
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव पलुटावति ।।
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूरप्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति ।। १५ ।।

निसि दिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे ।।
दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ।।
आंसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास-प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे ।। १८ ।

नैननि नाध्यौ है भर।
ऊँचे चढ़ि टेरति आतुर सुर, कहि गिरिधर गिरिधर ।।
फिरति सदन दरसन के काजैं ज्यौं झख सूखे सर।
कौन-कौन की दसा कहौं सुनि, सब ब्रज तिनतैं पर ।।
निसि दिन कलमलाति सुनि सजनी, गाजतमनमथ अर।
सूरदास सब रहीं मौन ह्वै, अतिहिं मैन के भर ।। १६

ऊधो मन न भए दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस॥
इंद्री सिथिल भई केसव विनु, ज्यौं देही विनु सीस।
आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस।
सूर हमारैं नंदनंदन विनु, और नहीं जगदीस॥ २०॥



मीरां

—::o::o::—

१

रास पूनो जनमिया री राधका अवतार।
ज्ञान-चौसर मंडी चौहटें खेलता संसार।
गिरधरां री रची बाजी जीत भावांहार।
साध संता ज्ञानवन्ता चालतां उधार।
दासि मीरां लाल गिरधर जीवना दिन च्यार॥

२

कांई म्हारो जनम वारम्बार।
पुरवलां कांई पुन्न खूट्यां मानसा अवतार।
बढ्या छिन छिन घट्या पल पल जातना कछु बार।
बिरछ रां जो पात टूट्यां लग्यां ना फिर डार।
भौ समुन्द अपार देखां अगम औखी धार।
लाल गिरधर तरन तारन बेग करस्यो पार॥

३

निपट बंकट छब अटके म्हारे नैंना निपट बंकट छब अटके।
देख्यां रूप मदन मोहन री पियतपियूख न मटके।
बारिज भवां अलक मतवारी नैंन रूप रस अटके।
टेढ्यां कट टेढें कर मुरली टेढ्या पाग लर लटके।
मीरां प्रभु रे रूप लुभानी गिरधर नागर नटके॥

४

म्हां गिरधर रंगरांती।
पचरंग चोला पहेरयां सखि म्हा झरमट खेलन जाती।
वा झरमट मां मिल्या सांवरो देख्यां तन मन राती।
जिनरो पियां परदेस बस्यां री लिखलिख भेज्यां पाती।
म्हारा पियां म्हारे हीयरे बसतां ना आवां ना जाती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर मग जौवा दिन राती।

५

माई री म्हां लिया गोविन्दां मोल।
थे कहां छाने म्हां कां चोड्डे लियां बजंतां ढोल।
थे कह्यां मुंहोघ म्हां कह्यां सुस्तो लिया री तराजां तोल।
तन वारां म्हां जीवनवारां वारां अमोलक मोल।
मीरां कूं प्रभु दरसन दीज्यां पुरव जनम को कोल॥

६

माई म्हानो सुपना मां परन्यां दीनानाथ।
छप्पन कोटां जनां पधार्यां दूल्हो सिरी व्रजनाथ।
सुपनां मां तोरन बंध्या री सुपनां मां गह्या हाथ।
सुपनाँ माँ म्हारो परन गया पायाँ अचल सुहाग।
मीराँ रो गिरधर मिल्या री पुरब जनम रो भाग॥

७

लगन म्हारी स्याम सूं लागी
नैना निरख सुख पाय।
साजाँ सिंगार सुहागाँ सजनी प्रीतम मिलया धाय।
बरना बरयाँ बापुरो जनम्या जनम नसाय।
बरयाँ साजन साँवरो म्हारो चुडलो अमर हो जाय।
जनम जनम रो कान्हरो म्हारी प्रीत बुझाय।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी कब रे मिलस्यो आय॥

८

हेरी म्हाँ तो दरद दिवानी म्हाराँ दरद ना जान्यो कोय।
घायल री गत घायल जान्या हियरो अगन संजोय।
जौहर कीमत जौहराँ जान्याँ क्या जान्याँ जिन खोय।
दरद री मारयाँ दर दर डोल्याँ बैद मिल्या ना कोय।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगाँ जद बैद साँवरो होय॥

९

सखी म्हारी नींद नसानी हो।
पिय रो पंथ निहारताँ सब रैन बिहानी हो।
सखियाँ सब मिल सीख दयाँ मन एक ना मानी हो।
बिन देख्याँ कल ना पड़ाँ मन रोस ना ठानी हो।
अंग खीन व्याकुल भयाँ मुख पिव पिव बानी हो।
अन्तर बेदन बिरह री म्हारी पीड़ ना जानी हो।
ज्यूँ चातक घन कूं रटाँ मछरी ज्यूँ पानी हो।
मीरा व्याकुल बिरहनी सुध बुध बिसरानी हो।

१०

देखां माई हरि मन काठ कियां।
आवन कह गयां अजां ना आयाँ कर म्हाने कोल गयां।
खान पान सुध बुध सब बिसर्‌याँ काँई म्हारो प्राण जियाँ।
थारो कोल विरूद जग थारौ थे काईं बिसर गयाँ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर थे बिन फटाँ हियाँ॥

११

म्हारौ जनम जनम रौ साथी थाने ना बिसरया दिन राँती।
थाँ देख्याँ बिन कल ना पड़ताँ जाने म्हारी छाँती।
ऊचाँ चढ चढ पंथ निहार्‌याँ कलप कलप अखयाँ राँती।
भौसागर जग बंधन झूठा झूठाँ कुल राँ न्याती।
पल पल थारां रूप निहारां निरख निरख मदमांती।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चितरांती॥

१२

जोशीडा ने लाख बधायां रे आस्यां म्हारो स्याम।
म्हारे आनंद उमंग भर्‌यां री जीव लह्यां सुखधाम।
पांच सख्यां मिल पीव रिझावां आनंद ठामा ठाम।
बिसर जावां दुख निरखां पिया री सुफल मनोरथ काम।
मीरां रे सुखसागर स्वामी भवन पधार्‌यां स्याम॥

१३

सुन्या री म्हारे हरि आवांगा आज।
म्हैंला चढ चढ जोवां सजनी कब आवां महाराज॥
दादुर मोर पपीआ बोल्यां कोइल मधुरां साज।
उमग्यां इंद चहूँ दिश बरसां दामन छोड्यां लाज।
धरती रूप नवां नवां धर्‍यां इंद मिलन रे काज।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर बेग मिल्यो महाराज॥

१४

पग बांध घुंघर्‍यां नाच्यां री।
लोग कह्यां मीरां बावरी सासू कह्या कुलनासा री।
विखरो प्यालो राणा भेज्यां पीवां मीरा हांसां री।
तन मन वार्‍यां हरि चरणां मां दरसन अमरित पास्यां री।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर थारी शरण आस्यां री॥

१५

सांवरियो रंग रांचां राणां सांवरियो रंग रांचां।
ताल पखावजां मिरदंग बाजां साधां आगे नाचां।
बूझ्या माने मदन बावरी श्याम प्रीत म्हां कांचा।
विखरो प्यालो राणां भेज्या आरोग्यां ना जांचां
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर जनम जनम रो सांचां॥

१६

बरसां री बदरियां सावन री मनभावन री ।
सावन मां उमग्यो म्हारो मन री भनक सुन्यां हरि आवन री ।
उमड घुमड घन मेघां आयां दामन घन झर लावन री ।
बीजां बूदां मेंहां आयां बरसां शीतल पवन सुहावन री।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर बेला मंगल गावन री ॥

१७

बादला रे थें जल भरां आज्यो ।
झर झर बूँदां बरसां आली कोयल सबद सुनाज्यो ।
गाज्यां बाज्यां पवन मधुरयो अंबर बदरां छाज्यो ।
सेज सवांरया पिय घर आस्यां सखयां मंगल गास्यो ।
मीरां रे प्रभु हरि अविनासी भाग भल्या जिनपास्यो ॥

१८

म्हां गिरधर आगां नाच्यां री ।
नाच नाच म्हां रसिक रिझावां प्रीत पुरातन जांच्यां री ।
स्याम प्रीत रो बांध घूंघरयां मोहन म्हारो सांच्यां री ।
लोक लाज कुलरां मरज्यादां जग मां नेक ना राख्यां री ।
प्रीतम पल छन ना बिसरावां मीरां हरि रंग राच्यां री ॥

१९

माई म्हा गोविन्द गुण गाना ।
राजा रूठ्यां नगरी त्यागां हरि रूठ्या कठ जाना ।

राणा भेज्यां बिखरो प्याला चरणामृत पी जाना।
काला नाग पिटारयां भेज्यां सालगराम पिछाना।
मीरां गिरधर प्रेम बावरी सांवल्या वर पाना।

२०

साजन म्हारे घर आयां हो।
जुगां जुगां री जोवतां बिरहन पिव पायां हो।
रतन करां नेवछावरां ले आरत साजां हो।
प्रीतम दयां संनेसला म्हारों घनों नेवाजां हो।
पिय आया म्हारे सांवरा अंग आंनद साजां हो।
मीरां रे सुख सागरां म्हारे सीस विराजां हो॥

२१

अब तो निभायां बांह गह्यां री लाज।
असरन सरन कह्यां गिरधारी पतित उधारन पाज।
भौसागर मझधार अधारां, थें बिन घनो अकाज।
जुग जुग भीर हरां भगतां री दीस्यां माच्छ नेवाज।
मीरां सरण गह्यां चरणां री लाज रखां महाराज॥

२२

हरि थें हरयां जन री भीर।
द्रोपदी री लाज राख्यां थें बढ्यायां चीर।
भगत कारण रूप नरहरिधरयां आप सरीर।
बूडतां गजराज राख्यां कढ्यां कुंजर पीर।
दासि मीरा लाल गिरधर हरां म्हारी भीर॥

—:⁂:०:⁂:—

तुलसी

विनयपत्रिका

—::o::o::—

दानी कहुं संकर सम नाहीं।
दीनदयालु दिबोई भावैं जाचक सदा सोहाहीं॥
मारि कै मार थप्यों जग में जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर को रीझि निजाजिवो कह्यो क्यों परत मो पाहीं॥१॥

जोग कोटि करि जो गति हरि सौं मुनि मांगत सकुचाहीं।
बेदबिदित तेहि पद पुरारि-पुर कीट पतंग समाहीं॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ मांगने कबहुँ न पेट अघाहीं॥ २॥

जाके गति है श्री हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आनकी।
सुमिरत संकट-सोच बिमोचन मूरति मोदनिधान की॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥३॥

कबहूंक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥

बूझिहैं सो है कौन? कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किए बचन-सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ॥ ४॥

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥ ५॥

हे हरि कवन जतन सुख मानहु?
जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे।
रहनि आन विधि, कहिय आन, हरिपद सुख पाइय कैसे॥
देखत चाय मयूर बरुन-सुभ, बोलि सुधा इव सानी।
सविष उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी॥
अखिल-जीव-बत्सल निर्मत्सर चरन-कमल - अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुवीर धीरमति अतिसय निज-पर-त्यागी॥
जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग रघुराया।
तुलसिदास निज गुन विचारि करुना-निधान करु दाया॥ ६॥

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई॥
जो जग मृग मृषा, ताप-त्रय-अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगवारि सत्य, भ्रम तें दुख होइ बिसेखे॥
सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुं नाव न पार पाव सो जब लगि आपु न जागै॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया बिबेक तें व्यवहारी सुखकारी॥
तुलसिदास सब बिधिप्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति-भगति संत-संगति बिनु को भव त्रास नसावै॥ ७॥

अस कछु समुझि परत, रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दासहित मोह न छूटै माया॥
वाक्यज्ञान अत्यन्त निपुन भवपार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातिन्ह तम निवृत्त नहिं होई॥
जैसे कोइ इक दीन दुखित अति असन-हीन दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै॥
षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोई पै जानै॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय-आस मन माहीं।
तुलसीदास तब लगि जगजोनि भ्रमत, सपनेहुं सुख नाहीं॥ ८॥

—::o::o::—

कवितावली

छप्पय

—::०::०::—

भस्म अंग-मर्दन अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर॥
मुंड माल, बिधु बाल भाल, डमरू कपाल कर।
बिबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद, सूलधर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिष-भोजन भव-भय हरन।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन॥६॥

गरल-असन, दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जनरंजन।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंदघन॥
बिकट वेष, उर शेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि॥
कन्दर्पदर्प-दुर्गम-दबन, उमारवन गुनभवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुरमथन जय त्रिदस बर॥१०॥

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।
विषम असन, दिगवसन, नाम बिस्बेष बिस्व गति॥
कर कपाल, सिरमाल ब्याल, बिष-भूति-बिभूषन।
नाम सुद्ध, अबिरूद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।
सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसयसमन॥११॥

भूतनाथ भयहरन, भीम, भय-भवन, भूमिधर।
भानुमंत भगवंत भूति भूषन भुजंगवर॥
भव्य-भाव-वल्लभ, भवेस, भवभार-विभंजन।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जन-रंजन॥
भारती वदन विष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावकनयन।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन॥ १२॥

कवितावली

सवैया

—::०::०::—

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै॥१३॥

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय! छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पांय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥"
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥१४॥

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रकुटी बड़री अंखियां, अनमोल कपोलन की छवि है॥
तुलसी असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर सांवरी देह लसै मनो रासि महा तम तारक मै॥१५॥

गीतावली

—::०::०::०::—

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ?
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जोपै पिय परिहर्‌यो राजु।
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद मूल फल अमिय नाजु।
प्रभुपद कमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहि तें अधिक कहा सुख-समाजु।
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥१६॥

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे।
उर धकधकी न कहत कछु सकुचानि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे।
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान-कृपान बीर सी छोरे।
तात बिदा मांगिए मातु सौं, बनिहै बात उपाइ न औरे।
जाइ चरन गहि आयसु जांचौ, जननि कहत बहुभांति निहोरे।
सिय-रघुवर-सेवा सुचि ह्वैहौ तौं जानिहौं सही सुत मोरे।
कीजहु इहै बिचार निरन्तर राम समीप सुकृत नहिं थोरे।
तुलसी सुनि सिष चले चकित-चित, उड़्यो मानो बिहग बधिक भए भोरे॥१७॥

—::०::०::—

रहीम

—::o::o::—

अनुचित बचन न मानिये, यदपि गुराइस गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तैं, सुयश भरत को वाढ़ि॥ १॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
सांचेसे तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम॥ २॥
एकहिं साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय॥ ३॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातनकी बधू, क्यों न चंचला होय॥ ४॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाभ भौ धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम॥ ५॥
खैर खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदमान।
रहिमन दावे ना दबैं, जानत सकल जहांन॥ ६॥
गगन चढ़ै फिर क्यों तिरै, रहिमन वहरी बाज।
फेरि आइ बन्धन परै, पेट अधम के काज॥ ७॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा परत है, सो आवत यहि देस॥ ८॥
जे रहीम बिधि बड़ किये, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥ ९॥
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आंसु गारिबो खीस॥ १०॥

जब लगि जीवन जगतमें, सब सुख मिलत अगोट।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुंन सिर चोट॥ ११॥
देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन॥ १२॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचान।
सोच नहीं बित हानिको, जो न होय हित हानि॥ १३॥
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुलकी कुल-बधू, चिथड़न माहिं सुहात॥ १४॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करै किन कोय।
रहिमन फाटे दूध के, मथै न माखन होय॥ १५॥
मान सहित विष खाय के, सम्भु भयो जगदीस।
बिना मान अमृत पियो, राहु कटायो सीस॥ १६॥
ये रहीम दर दर फिरैं, मांगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो, वे रहीम अब नाहिं॥ १७॥
रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वानके, दोऊ भांति विपरीति॥ १८॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ हैं, बनत न लगिहे देर॥ १९॥
रन, बन, व्याधि विपत्ति में, रहिमन डरै न कोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय॥ २०॥
रहिमन धागा प्रेम को, मत तोरौ छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गांठ परि जाय॥ २१॥
रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बांटि न लैहै कोय॥ २२॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन कर गहे, मद समुझै सब ताहि ॥ २३ ॥
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरें, मोती मानुस, चून ॥ २४ ॥
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धर्म अरु दान।
भू-पर जन्म बृथा धरे, पसु बिन पूँछ बिसान ॥ २५ ॥
रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगतमें, जानि परत सब कोय ॥ २६ ॥
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम होती कहूँ, विधि गति अपने हाथ ॥ २७ ॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ, सांप सहज धरि खाय ॥ २८ ॥
गहिं सरनागत रामकी, भवसागरकी नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाय ॥ २९ ॥
जे गरीब परहित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग ॥ ३० ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन बिष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥ ३१ ॥
धन, दारा अरु सुतन सो, रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिनको मित्त ॥ ३२ ॥
निज कर क्रिया, रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पांसे अपने हाथमें, दाव न आपुन हाथ ॥ ३३ ॥
पावस देखि रहीम बन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये, हमहिं पूछिहै कौन ॥ ३४ ॥
यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अखियां निरखि, आंखिनकी सुख होत ॥३५॥

यों रहीम गति बड़ेनकी, ज्यों तुरंग ब्यौहार।
दाग दिवावत आपुतन, सही होत असवार ॥ ३६ ॥
रहिमन कहत सुपेट सौं, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करे, मरे बिगारे दीठ ॥ ३७ ॥
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचै दाम।
हरि बाढ़े आकाश को, तऊ बावनै नाम ॥ ३८ ॥
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ जान दे, गरूए राखु बटोर ॥ ३९ ॥
समय परै ओछे वचन, सब के सहे रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा गहि रहे भीम ॥ ४० ॥

—::०::०::—

सहजोबाई

—::o::o::—

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहीं ॥ १ ॥
गुरु मग दृढ़ पग राखिये, डिगमिग डिगमिग छांड।
सहजो टेक टरै नहीं, सूर सती ज्यों मांड ॥ २ ॥
गुरु बिन मारग ना चलै, गुरु बिन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुंध है, गुरु बिन पूरी हान ॥ ३ ॥
सतगुरु बिन भटकत फिरै परसत पाथर नीर।
सहजो कैसे मिटत है, जम जालिम की पीर ॥ ४ ॥
सिप का माना सतगुरु, गुरु झिड़कै लख बार।
सहजो द्वार न छोड़िये, यही धारना धार ॥ ५ ॥
गुरु दरसन कर सहजिया, गुरु का कीजै ध्यान।
गुरु की सेवा कीजिये, तजिये कुल अभिमान ॥ ६ ॥
दीपक ले गुरु ज्ञान को, जगत अंधेरे माहिं।
काम क्रोध मद मोह में, सहजो उरझै नाहिं ॥ ७ ॥
सहजो सतगुरु के मिले, भये और सूं और।
काग पलट गति हंस ह्वै, पाई भूली ठौर ॥ ८ ॥
चिंउटी जहां न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूं वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥ ९ ॥
सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूं रंग देत।
जैसा तैसा बसन ह्वै, जो कोइ आवै सेत ॥ १० ॥

सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं।
तार सकैं नहिं एक कूं, गहैं बहुत की बांह॥

सहजो भज हरिनाम कूं, तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई है नहीं, अपनी सगी न देह॥ ११॥
यही कही गुरुदेवजू, यही पुकारैं संत।
सहजो तज या जगत कूं, तोहि तजैगो अन्त॥ १२॥
जैसे संड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग॥ १३॥
अचरज जीवन जगत में, मरिवो साचो जान।
सहजो अवसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान॥ १४॥
जब लग चावल धान मैं, तब लग उपजै आय।
जग छिलके कूं तजि निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय॥ १५॥
दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद॥ १६॥
सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहि जायं।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायं॥ १७॥
सहजो धन मांगे कुटुम्ब, गाड़ा धरा बताय।
जो कछु है सो दे हमें, फिर पाछे मरि जाय॥ १८॥
मुख देखैं ढापैं भजैं, तड़ दे तोड़ैं नेह।
सहजो पति सुत निज हितू, जारि करैंगे खेह॥ १९॥
काढ़ काढ़ बेगी कहैं, भीतर बाहर लोग।
जीव छुटे सहजो कहै, तन का सगा न कोय॥ २०॥
सहजो फिर पछितायगी, स्वास निकसि जब जाय।
जब लग रहै सरीर में, राम सुमिर गुन गाय॥ २१॥

सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन रैन।
मूरख सोवत है सदा, चेतन कूं नहिं चैन ॥ २२ ॥
यह रस्ता बहता रहै, थमै नहीं छिन एक।
बहु आवैं बहु जातु हैं, सहजो आंखिन देख ॥ २३ ॥
जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय।
सहजो योंही रीति है, मत कर सोच उपाय ॥ २४ ॥
देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
इइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त ॥ २५ ॥
कलप रोय पछिताय थक, नेह तजौगे कूर।
पहिले ही सूँ जो तजै, सहजो सो जन सूर ॥ २६ ॥
आगे मुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर कूं क्या झुरै, आपन ही कूं रोय ॥ २७ ॥

सहजो साधन के मिले, मन भयो हरि के रूप।
चाह गई थिरता भई, रंक लख्यौ सोइ भूप ॥ २८ ॥
साध मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर ॥ २९ ॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥ ३० ॥
सहजो संगत साध की, काग हँस हो जाय।
तजि के भच्छ अभच्छ कूं, मोती चुगि चुगि खाय ॥ ३१ ॥
सहजो संगत साध की, छुटै सकल बियाध।
दुर्मति पाप रहै नहीं, लागै रंग अगाध ॥ ३२ ॥
सहजो दरसन साध का, देखूँ वारूं प्रान।
जिनकी किरपा पाइये, निर्भय पद निर्वान ॥ ३३ ॥

ऐसा सुमिरन कीजिये, सहज रहै लौ लाय।
बिनु जिभ्या बिनु तालुवै, अन्तर सुरति लगाय ॥३४॥
हँसा सोहं तार करि, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय ॥३५॥
बरत बाँध करि धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यों फिरै, सहजो राम रिझाय ॥३६॥
लगै सुन्न में टकटकी आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं करि, सहजो रहै समाय ॥३७॥
सहज स्वास तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनों छुटैं, हरि पद पहुँचे जाय ॥३८॥
हकारे उठि नाम सूं, सकारे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन ॥३९॥
सब घट अजपा जाप है, हंसा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख ॥४०॥
सब घट व्यापक राम है, देही नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक ॥४१॥

—::०::०::—

सुन्दर दास

—:o:—

१

एकहि कूप तें नीरहि सींचत, ईख अफीमहि अंब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि, मिष्ट कटुक खटा अरु खारा॥
त्यूँही उपाधि संजोग तें आतम, दीसत आहि मिल्यो सविकारा।
काढ़ि लिये सु विवेक बिचार सूं, सुन्दर सुद्ध सरूपहि न्यारा॥

२

देह ओर देखिये तौ, देह पंचभूतन को।
ब्रह्मा अरु कीट लग, देहही प्रधान है॥
प्राण ओर देखिये तौ, प्राण सबही के एक।
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ, व्यापत समान है॥
मन ओर देखिये तौ मन को सुभाव एक।
संकल्प विकल्प करै, सदाही अज्ञान है॥
आतम बिचार किये, आतमाही दीसै एक।
सुन्दर कहत कोऊ, दूसरो न आन है॥

३

और तो बचन ऐसे, बोलत हैं पसु जैसे।
तिन के तौ बोलिबे में, ढंगहू न एक है॥

कोऊ रात दिवह, वकतही रहत ऐसे ।
जैसी विधि कूप में, वकत मानो भेक है ॥
विविध प्रकार करि, बोलत जरात सब ।
घट घट प्रतिमुख बचन अनेक है ॥
सुन्दर कहत ता तें, वचन बिचारि लेहु ।
वचन तो वहै जा में, पाइये बिबेक है ॥

४

एकनि के बचन सुनत, अति सुख होइ ।
फूल से भरत ह्वै, अधिक मनभावने ॥
एकनि के बचन तौ, अग्नि मानौ बरसत ।
स्रवन के सुनत, लगत अलखावने ॥
एकनि के बचन, कटुक कहु बिष रूप ।
करत मरम छेद, दुक्ख उपजावने ॥
सुन्दर कहत घट घट में बचन भेद ।
उत्तम मध्यम अरु, अधम सुहावने ॥

५

बोलिये तौ तब जब, बोलिबे की सुधि होइ ।
न तौ मुख मौन गहि, चुप होइ रहिये ॥
जोरिये तौ तब जब, जोरिबे की जानि परै ।
तुक छंद अरथ, अनूप जा में लहिये ॥

गाइये तौ तब जब, गाइबे को कंठ होइ ।
स्रवण के सुनतही, मन जाइ गहिये ॥
तुक-भंग छंद-भंग, अरथ मिलै न कछु ।
सुन्दर कहत ऐसी, बाणी नहीं कहिये ॥

६.

तू कछु और बिचारत है नर,
तेरो बिचार धस्योही रहेगो ।
कोटि उपाय करै धन के हित,
भाग लिख्यो तितनोहि लहेगो ॥
भोर कि सांझ घरी पल मांझ सु,
काल अचानक आइ गहेगो ।
राम भज्यो न कियो कछु किरत,
सुन्दर यूं पछताइ रहेगो ॥

७

मातु पिता युवती सुत बांधव,
लागत है सब कूं अति प्यारो ।
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत,
होइ नहीं हम तें कहुँ न्यारो ॥
देह सनेह तहां तग जानहु,
बोलत है मुख सबद उचारो ।
सुन्दर चेतन सक्ति गई जब,
वेगि कहै बरबार निकारो ॥

८

जा सरीर माहिं तू अनेक सुख मानि रह्यो,
ताहि तू बिचार या में कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग रग में रक्त भर्यो,
पेटहू पिटारी सी मैं ठौर ठौर मली है॥
हाड़न सूँ भर्यो मुख हाड़न के नैन नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़न की नली है।
सुन्दर कहत याहि देखि जनि भूलै कोई,
भीतर भंगार भरी ऊपर तौ कली है॥

६

प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और
चित्त सों न चन्दन सनेह सों न सेहरा॥
हृदय सों न आसन सहज सों न सिंहासन।
भाव सी न सेज और सून्य सों न गेहरा॥
सील सों न स्नान अरू ध्यान सों न धूप और।
ज्ञान सों न दीपक अज्ञान तम केहरा॥
मन सी न माला कोऊ सोहं सो न जाप और।
आतम सों देव नाहिं देह सों न देहरा॥

—::o::o::—

केशव

—::०::०::—

एक काल राम देव, साधु बंधु करत सेव।
सोभिजैं सबै सु और, मंत्रि मित्र ठौर-ठौर॥
वानरेस जूथनाथ, लंकनाथ-बंधु साथ,
सोभिजै सभा सुवेस देस-देस के नरेस॥

सरस स्वरूप विलोकि कै, उपजी मदनहिं लाज।
आइ गए ताही समय, 'केशव' ऋषि ऋषिराज॥
असित, अत्रि, भृगु, अंगिरा, कस्यप, गौतम व्यास।
विस्वामित्र, अगस्त्यजुत, वाल्मीकि, दुर्वास॥
वामदेव मुनि कन्वजुत, भर द्वाज मतिनिष्ठ।
पर्वतादि दै सकल मुनि, आये सहित बशिष्ठ॥

सबंधु रामचन्द्रजू उठे बिलोकि कै तबै,
सभा समेत पां परे विसेषि पूजियो सबै।
बिवेक सों अनेकधा दए अनूप आसने,
अनर्घ अर्घ आदि दै बिनै किये घने-घने॥

रावरे मुख के बिलोकत ही भये दुख दूरि,
सुप्रलापन ही रहे उर मध्य आनन्द पूरि।
देह पावन ह्वै गयो पद-पद्म को पय पाय,
पूजतै भयो वंश पूजित आसु ही मुनिराय॥

संनिधान भरे तपोधन, धाम, धी, धन, धर्म,
अद्य सद्य सबै भये निरवद्य वासर-कर्म।
ईस जद्यपि दृष्टिहीं भइ भूरि मंगल बृष्टि,
पूंछिबे कहं होति है सु तथापि बाक-बिसृष्टि॥

गंगा-सागर सों बड़ो साधुन को सतसंग।
पावन करि उपदेश अति अद्भुत करत अभंग॥

किये विसेष सों असेष काज देवराय के,
सदा त्रिलोक लोकनाथ धर्म विप्र गाय के।
अनादि सिद्धि राज-सिद्धि राज आज लीजई,
नृदेवतानि देवतानि दीह सुक्ख दीजई॥

मारे अरि, पारे हितू, कौन हेतु रघुनन्द।
निरानन्द से देखियै, जद्यपि परमानन्द॥
सुनि ज्ञान-मानस-हंस, जग-जोग-जाग प्रसंस।
जगमांझ है दुख-जाल, सुख है कहा यहि काल॥
तहं राज है दुख-मूल, सब पाप कों अनुकूल।
अब ताहि लै ऋषिराइ, कहि कोन नरकहि जाइ॥

सोदर मंत्रिन के जे चरित्र। इनके हमपै सुनि मख-मित्र।
इनहीं लगे राज को काज। इनहीं ते सब होत अकाज॥
राज भार नल भैयहि दयो। छलबल छीनि सबै तिन लियो।
जब लीनो सब राज विचारि। नल-दमयंती दियो निकारि॥
राजा सुरथराज की गाथ। सौंपी सब मंत्रिन के हाथ।
संतत मृगयालीन बिचारि। मंत्रिन राजा दियो निकारि॥

राज-श्री अति चंचल तात। ताहू की सुनि लीजै बात।
जोबन अरु अबिबेकी रंग। बिनस्यौ को न राज-श्री संग॥
सास्त्र सुजलहूँ न धोवत तात। मलिन होत अति ताके गात।
जद्यपि है अति उज्जल दृष्टि। तदपि सृजति रागन की सृष्टि॥
महापुरुष सों जाकी प्रीति। हरति सो झंझा मारुत रीति।
विषय मरीचिकानि की जोति। इन्द्री-हरिन-हारिनी होति॥
गुरु के बचन अमल अनुकूल। सुनत होत स्रवनन को सूल।
मैनवलित नव बसन सुदेस। भिदत नहीं जल ज्यों उपदेस॥
मित्रन हू को मतो न लेति। प्रतिसव्दक ज्यों उत्तर देति।
पहिले सुनै न सोर सुनंति। माती कारिनी ज्यों न गनंति॥

धर्म धीरता विनयता, सत्य शील आचार।
राजश्री न गनै कछू, वेद-पुरान-बिचार॥

सागर में बहु काल जो रही। सीत वक्रता ससि तें लही।
सुर-तुरंग-चरन तें तात। सीखी चंचलता की बात॥
कालकूट तें मोहन रीति। मनि गन तें अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा तें मादकता लई। मंदर उदर भई भ्रममई॥

शेष दई बहु जिह्वता, बहु लोचनता चारु।
अप्सरान तें सीखियो, अपर-पुरुष-संचारु॥

दृढ़ गुन बांधे हू बहु भाँति। को जानै केहि भाँति बिलाति।
गज घोटक भट कोटिन अरै। खंङ्ग-लता-पंजर हू परै॥
अपनाइति कीन्हे बहु भाँति। को जाने कित ह्वै भजि जाति।
धर्म-कोस-मंडित सुभ देस। तजति भ्रमरि ज्यों कमल नरेस॥

जद्यपि होइ सुद्धमति सत्त। फिरै पिसाची ज्यों उनमत्त।
सूरनि नाखति ज्यों अहि देखि। कंटक ज्यों बहु साधुनि लेखि॥
सुधा-सोदरा जद्यपि आप। सब ही तें अति कटुक-प्रताप।
जद्यपि पुरुषोत्तम की नारि। तदपि सकल खलजन अनुहारि॥
हितकारिन की अति द्वेषिणी। अहित लोग की अन्वेषिणी।
मन-मृग को सुबधिक की गीति। विषय-बेलि कों वारिद-रीति॥
मद-पिसाचिका कैसी अली। मोह-नींद की सज्जाभली।
आसीविष दोषन की दरी। गुन-सत पुरुषनिकारन छरी॥
कलहंसन की मेघावली। कपट-नृत्य-कारी की थली॥

बाम काम-करि की किधौं, कोमल कदलि सुबेष।
धीर-धर्म-द्विजराज में, मनहु राहु की रेख॥

मुख-रोगी ज्यों मौनै रहै। बात बख्याइ एक-द्वै कहै।
बन्धुबर्ग पहिचानति नहीं। मानों सन्निपात है गही॥
महामंत्र हूँ होत न बोध। डसी काल-अहि करि जनु क्रोध
पान-बिलास-उदित आतुरी। परदारा गमनै चातुरी॥
मृगया यहै सूरता बढ़ी। बंदी मुखनि चाय सों पढ़ी।
जौ केहू चितवै यह दया। बात कहै तो बड़ीयै मया॥
दरसन दीबो ई अति दान। हँसि बोलै तो बड़ सनमान।
जो काहू सों अपनो कहै। सपने कैसी पदवी लहै॥

जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुख-बक्ताई जानिये, संतत मंत्री मित्र॥

कहौं कहाँ लगि ताके साज। तुम सब जानत हौ ऋषिराज।
जैसी सिव मूरति मानियै। तैसी राजश्री जानियै॥
सावधान ह्वै सेवै जाहि। सांचो देत परम पद ताहि।
जितने नृप आए बस भये। पेलि स्वर्ग-मग नरकहि गये॥

—::०::०::—

सेनापति

—::o::o::—

जात है न खेयो क्यौंहूँ बल्ली न लगत नीकी।
सोचत अधिक मन मूढ़ सब लोग कौं।
नदीन कौं नाथ यातैं पैरत न बनै काहू
सेनापति राम बीर करता असोग कौं॥
दीरघ उसास लेत अहि रहै भारी जहां
तिमिर है बिकट बतायौ पंथ जोग कौं।
कान्ह के अछत कंज काम केलि आगर ही
तेई बिन कान्ह भई सागर बियोग कौं॥ १॥

सब अंग थोरे थोरे बहुधा रतन जोरैं
राखैं मुख ऊपर हू जे न इतबार हैं।
नान्हैं बोल बोलैं सभै देखत न पट खोलैं
राज धन राखिबे कौं पाए अवतार हैं॥
जनम तैं कौहू जे न भरम तैं भागे जात
सत्तहीन आगे सदा राखत न कार हैं।
कामहिं न आवैं सेनापति कौं न भावैं दोऊ
खोजा अरु सूम सम कीने करतार हैं॥ २॥
खेत के रहैया अति अमल अरुन नैंन
ओर के असील गुन ही के जे निकेत हैं।
जगत बिदित कलिकाल के करन हारे
नाहिनै समर कहूँ बिजय समेत हैं॥

सेनापति सुमति विचारि ऐसे साहिबन
भजौ परबीन जातैं आस बस चेत हैं।
द्विजन कौं रोकि मनि कंचन गनिकै देत
रीझि देत हाथी कौं सहज वाजी देत हैं॥ ३॥

मैलन घटावै महा तिमिर मिटावै सुभ
डीठि कौं बढ़ावै चारि बेदन बतायौ है।
सन्यौ घनसार सम सीतल सलिल रस
सेनापति पुरबिले पुन्यन ही पायौ है॥
कैसे मन आवै अचरज उपजावै वीच
फूलै रससावै पीत बसन धरायौ है।
भव भय भंजन निरंजन के देखिबे कौं
गंगा जू कौं मंजन सु अंजन बनायौ है॥ ४॥
जाके रोजनामे सेस सहस बदन पढ़ै
पावत न पार जऊ सागर सुमति कौं।
कोई महाजन ताकी सरि कौं न पूजै नभ
जल थल व्यापि रहै अदभुत गति कौं॥
एक एक पुर पीछे अगनित कोठा तहां
पहुँचत आप संग साथी न सुरति कौं।
वानियै बखानैं जाकी हुंडी न फिरति सोई
नाहु सिय रानी जू कौं साहु सेनापति कौं॥ ५॥

पांचौ सुरतरु कौं जौ एकै सुरतरु, एक
देह जौ बसंत रति-कंत की बनाइयै।
बीते, होनहार, चंद पून्यौं के सकल जोरि,
चंद करि एकै जौ दृगन दिखराइयै॥

दसौं लोकपालन कौं एकै लोकपाल, एक
बारह दिनेस कौं दिनेस ठहराइयै।
सेनापति महाराजा राम कौं अनूप तब,
राज-तेज रूप नैंक बरनि बताइयै ॥ ६ ॥

आयौ राम चापहिं चढ़ाइबे कौं महा-बाहु,
सेनापति देखे मन मोद गयौ बढ़ि कै।
अगन, गगन-चर, देखत तमासौ सब,
रह्यो आसमान है बिमानन सौं मढ़ि कै॥
आए सिद्ध चारन, कुतूहल के कारन हैं,
बोलत बिरद बीर बानी हू कौं पढ़ि कै।
चख, चित चाहति हैं, सूरति सराहति हैं,
बाला चंद्रमुखी चंद्रसालन मैं चढ़ि कै॥ ७॥

देखि चरनारबिंद बंदन कर्यौ बनाइ,
उर कौं बिलोकि, बिधि कीनी आलिंगन की।
चैन के परम ऐन, राखे करि नैंन नैंक,
निरखि निकाई इंदु सुन्दर बदन की॥
मानौं एक पतिनी के व्रत की, पतिव्रत की,
सेनापति सीमा तन मन अरपन की।
सिय रघुराई जू कौं माल पहिराई, लौन
राई करि जारी सुन्दराई त्रिभुवन की॥ ८॥

भीज्यौ है रुधिर, भार भीम, घनघोर धार,
जाकौं सत कोटि हू तें कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि कै, निछत्रिय करी है छिति
बार इकईस, तेज-पुंज कौं अधार है॥
सेनापति कहत कहाँ हैं रघुवीर कहौ?
छोह भस्यो लोह, करिबे कौं निरधार है।
परत पगनि, दसरथ कौं न गनि, आयौ
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार है॥ ९॥

बिस्व के सुधारन कौं, काम-जस-धारन कौं,
आपुही तें आयौ, तजि आपने भवन कौं।
ताकौं राज अवनी कौं, कहौं कहा अब नीकौ,
बसिबौ बनी कौं, दास-आस-पुजवन कौं॥
जद्यपि है ऐसी, तऊ चाहियै कह्यौई कछू,
यातें सेनापति कहै सज्जन स्रवन कौं।
देवन के हेत दशरथ कौं निकेत छांड़ि,
पन्नगारि-केतु चल्यौ पाइन ही बन कौं॥ १०॥

सेनापति सी-पति की अंतर-भगति, रति,
मुकति के हेत ताकी जुगति बनाइ कै।
बंचना सी करि राम-लछन की ताही छन,
कंचन मरीच मृग-माया उपजाइ कै॥
बीस-भुजदंड दससीस बरिबंड तब,
गिद्धराज हू के अंग अंग घोर घाइ कै।
राघव की जाया, ताकी कपट की काया,
सोई छाया हरि लै गयौ गगनपथ धाई कै॥ ११॥

सीता-सोध-काज, कपिराज चल्यौ पैज करि,
तेज बढ़यौ पाए राम पाइ के परस के।
ताके महा वेग की बढ़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति पाइ जे करैया हैं सुजस के॥
कब चढ़ि कूद्यौ, पर्‍यो पार के पहार कब,
अन्तर न पायौ दूनौ देह भार मसके।
देखौ छल-बल, दोऊ एक ही पलक बीच,
परे वार पार के बराबर ही धसके॥ १२॥

रावन कौं बीर, सेनापति रघुबीर जू की
आयौ है सरन, छांड़ि ताही मद-अंध कौं।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन-दीन-बंध कौं॥
देखौ दान-बीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानै सत्यसंघ कौं।
लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन कौं,
संकाऊ बिभीषन की दीनी दसकंध कौं॥ १३॥

पाल्यौ प्रहलाद, गज ग्राह तैं उबार्‍यो जिन,
जाकौं नाभि कमल, बिधाता हू कौं भौन है।
ध्यावैं सनकादि, जाहि गावैं वेद-बंदी, सदा
सेवा कै रिझावैं सेस, रवि, ससि, पौन है॥
ऐसे रघुबीर कौं, अधीर ह्वै सुनावौ पीर,
बंधु भीर आगे सेनापति भली मौन है।
सांवरे-बरन, ताही सारंग-धरन बिन,
दूजौ दुख-हरन हमारौ और कौन है॥ १४॥

—::०::०::—

बिहारी

—::०::०::—

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होय ॥ १ ॥
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥ २ ॥
जपमाला छापैं तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-कांचे नाचै बृथा, सांचे रांचे रामु ॥ ३ ॥
मोहन-मूरति स्याम की अति अद्‌भुत गति जोइ।
बसतु सुचित-अंतर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥ ४ ॥
मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥ ५ ॥
जहां जहां ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिन हू उन छिन गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥ ६ ॥
कनकु कनक तैं सौगुनो मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएँ बौराइ, इहिं पाए हीं बौराइ ॥ ७ ॥
अजौं न आए सहज रंग बिरह-दूबरैं गात।
अब हीं कहा चलाइयति, ललन, चलन की बात ॥ ८ ॥
निसि अंधियारी, नील पटु पहिरि, चली पिय-गेह।
कहौ, दुराई क्यों दुरै दीप-सिखा सी देह ॥ ९ ॥
गिरिं तैं ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥ १० ॥

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यों अनेक अधमनु दियौ।
जौ बांधैं ही तोषु, तौ बांधौ अपनैं गुननु ॥ ११ ॥
भूषन-भारु संभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं सोभा हीं कैं भार ॥ १२ ॥
ललन-चलनु सुनि पलनु मैं अंसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिनु हूँ झूठैं हीं जमुहाइ ॥ १३ ॥
रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरू।
मंद मंद आवत चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु ॥ १४ ॥
सकुचि सरकि पिय-निकट तैं मुलकि कछुक तनु तोरि।
कर आंचर की ओट करि, जमुहानी मुंहु मोरि ॥ १५ ॥
नाचि अचानक हीं उठे बिन पावस बन मोर।
जानति हौं, नंदित करी यह दिसि नन्द किसोर ॥ १६ ॥
बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥ १७ ॥
नर की अरु नल - नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊंचौ होइ ॥ १८ ॥
चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-विमल जल उछरत जुग मीन ॥ १९ ॥
डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंपि किसोरी दरसि कै, खरैं लजाने लाल ॥ २० ॥
किती न गोकुल कुलवधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥ २१ ॥
इन दुखिया अंखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नांहि।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाहिं ॥ २२ ॥

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौं न सनेह गंभीर।
को घटिए, बृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥ २३॥
इत आवति चलि, जाति उत चली, छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै लगी उसासनु साथ॥ २४॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंक हूं फारि निहारैं नैन॥ २५॥
को कहि सकै बड़ेन सौं लखैं बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल॥ २६॥

—::०::०::—

देव

—::०::०::—

ऊँच-नीच तन कर्म-बस चल्यौ जात संसार।
रहत भव्य भगवंत जसु नव्य काव्य सुख-सार॥ १॥
रहत न घर वर वाम धन तरुबर सरवर कूप।
जस-सरीर जग में अमर भव्य काव्य-रस-रूप॥ २॥
अर्थ सब्द सुन्दर सरस प्रगट भाव रस प्रीति।
उत्तम काव्य सु सब गुनन आगर नागर रीति॥ ३॥
अनुप्रास अरु जमक युत अद्‌भुत बारह बारह भांति।
इन्हें अछत नीकी लगै अलंकार की पांति॥ ४॥
ऊपर रूप अनूप अति, अंतर अंतक तूल।
इंद्रायन के फल यथा करियारी के फूल॥ ५॥
ऊपर रूखो अतिहि फल, अंतर अति रस राखि।
सुरुचि जीभ जौहर करत कौहर फल मुख चाखि॥ ६॥
कहत लहत उलहत हियो, सुनत चुनत चित प्रीति।
सब्द अर्थ भाषा सुरस बसत काव्य दस रीति॥ ७॥
कबिता-कामिनी सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे अधिक अद्‌भुत रूप लखाति॥ ८॥
अलंकार में मुख्य द्वै उपमा और स्वभाव।
सकल अलंकारन बिषे परसत प्रगट प्रभाव॥ ९॥
अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन॥ १०॥

पांयन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिन में धुनि की मधुराई।
सांवरे अंग लसै पटपीत, हिए हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक, सुन्दर श्री व्रज-दूलह देव सहाई॥११॥

मेरे गिरिधारी गिरि धर्यो धीर धीरजु,
अधीर जनि होहु अंगु लचकि लुरकि जाय।
लाड़िले कन्हैया बलि गई बलि मैया,
बोलि ल्याऊं बलभैया आय उरपै उरकि जाय॥
टेक रहि नेक जौलौं हाथ न पिराय,
देखि साधु संगु रीते अंगुरीते न बुरकि जाय।
पर्यो व्रज बैर बैरी बारिद-बाहन बारि,
बाहन के बोझ हरि बांह न मुरकि जाय॥१२॥
कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिगि, कलंकिनि, कुनारी हौं।
कैसो नरलोक, परलोक, बरलोकन में,
लीन्हीं मैं अलीक, लोक-लीकन ते न्यारी हौं॥
तन जाउ, मन जाउ, देव गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
बृन्दाबनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥१३॥

ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पांय तेरे तोरतो।
आजुलौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो॥

चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुंह मोरतो।
भारो प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बांधि,
राधाबर-बिरद के बारिधि में बोरतो ॥१४॥

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं न, पाथ मैं न, साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
नबी-कूप कुण्डन-अन्हान, दान-रीति मैं॥
पीठ-मठ-मंडल न, कुण्डल कमंडल न,
माला दंड मैं न देव देहरे की भीति मैं।
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं ॥१५॥

गुरुजन-जावन मिल्यो न भयो दृढ़ दधि,
मथ्यो न बिबेक-रई देव जो बनायगो।
माखन-मुकुति कहां छांड्यो न भुगुति जहां,
नेह बिनु सगरो सवाद खेह नायगो॥
बिलखत बच्यो मूल कच्यो सच्यो लोभ भांड़े,
तच्यो कोप-आंच पच्यो मदन छिनायगो।
पायो न सिराबन सलिल-छिमा-छीटन सों,
दूध सो जनमु बिनु जाने उफनायगो ॥१६॥

संपति में ऐंठि बैठे चौतरा अदालति के,
बिपति में पैन्हि बैठे पांय झुनझुनिया।
जेतो सुख संपति तितोई दुख बिपति में,
संपति में मिरज़ा, बिपति परे धुनिया॥

संपति ते बिपति, बिपतिहू ते संपति है,
संपति औ बिपति बराबरि कै गुनिया।
संपति में कांय-कांय बिपति में भांय-भांय,
कांय-कांय, भांय-भांय देखी सब दुनिया ॥१७॥

देव नभ-मन्दिर में बैठायो पुहुमि पीठ,
सिगरे सलिल अन्हवाये उमहत हौं।
सकल महीतल के मूल, फल, फूल, दल,
सहित सुगंधन चढ़ावन चहत हौं॥
अगिनि अनंत धूप, दीपक अखंड जोति,
जल थल अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं।
ढारत समीर चौर, कामना न मेरे और,
आठौ जाम, राम, तुम्हें पूजत रहत हौं॥१८॥

सवैया

बागो बन्यो जरपोस को तामहिं ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी में पाहन-पोत चल्यो चढ़ि कागद की छतुरी सिर दीने॥
कांख में बांधि कै पांख पतंग के, देव सुसंग पतंग को लीने।
मोम के मन्दिर माखन को मुनि, बैठ्यो हुतासन-आसन कीने॥१९॥

देव जिये जब पूँछो तौ पीर को पार कहूं लहि आवत नाहीं।
सो सब झूँठ मतै मत कै बकि, मौन सोऊ रहि आवत नाहीं॥
ह्वै नंद-नंद-तरंगिनि में मन फेन भयो गहि आवत नाहीं।
चाहै कह्यो बहुतेरो कछू, पै कहा कहिए, कहि आवत नाहीं॥२०॥

आवत आयु को द्योस अथौत, गये रवि त्यों अंधियारीयै ऐहै
दाम खरै कै खरीदु खरो गुरु, मोह की गौनी न फेरि बिकैहै ।
देव छितीस की छाप बिना जमराज-जगाती महा दुख दैहै
जात उठी पुर देह की पैंठ, अरे बनिये बनिये नहिं रैहै

हाय दई ! यहि काल के ख्याल में फूल से भूलि सबै कुंभिलाने
या जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में बिलाने
देव अदेव बली बलहीन चले गये मोह की हौस हिलाने
रूप कुरूप गुनी निगुनी जे जहाँ उपजे ते तहाँ हीं बिलाने

गांठिहु ते गिरि जात, गये यह पैये न फेरि जुपै जग जोवै
ठौरही ठौर रहैं ठग ठाढ़ेइ पीर जिन्हें न हँसे किन रोवै।
दीजिये ताहि जो आपन सो करै, देव लंकनि पंकनि धोवै
बुद्धि-बधू कों बनाय कै सौंपु तू, मानिक सो मन धोखे न खोवै।

—::o::o::—

मतिराम

—::०::०::—

ध्यावैं सुरासुर-सिद्धि-समाज, महेसहु आदि महामुनि ज्ञानी।
जोग मैं, जंत्र मैं, मंत्र मैं, तंत्र मैं, गावैं सदा श्रुति, शेष भवानी।
संकट-भाजन आनन की दुति पूरन दंड उदंड सो जानी।
ध्याय सदा पद-पंकज को, मतिराम तवै रसराज बखानी॥ १॥

जहँ प्रसिद्ध उपबर्न कौ पलटि कहत उपमेय।
बरनत तहाँ प्रतीप हैं कवि जन जगत अजेय॥ २॥

जाकी खीज भूपति भिखारी से निहारे होत
भूप से भिखारी जाकी रीझ पै सराह की,
नृपति को थप्पन-उथप्पन समर्थ सत्रु
साल-सुत करै करतूति चित चाह की।
कहै मतिराम फैली चहुं चक्क आन,
चहुवान-कुल-भानु भावसिंह नरनाह की,
राव सरिबर उमराव कैसे पावैं पात-
साह सरि पावै बलाबंध पातसाह की॥ ३॥

जहाँ और उपमान लहि बर्न्य अनादर होय।
तहौं प्रतीपहि कहत हैं कवि-कोविद सब कोय॥ ४॥

सागर में गहिराई, मेरु में उचाई, रति-
नायक में रूप की निकाई निरधारिए,

दान देवतरु मैं, सयान सुरगुरु मैं,
प्रसाद गंग-नीर मैं सु कैसे कै बिसारिए।
तरनि मैं तेज बरनत 'मतिराम' जोति
जगमगै जामिनी-रमन मैं बिचारिए,
रॉव भावसिंह कहा तुम ही बड़े हौ जग,
रावरे के गुन और ठौर हू निहारिए ॥ ५ ॥

जहाँ अनादर आन को उपाबर्न्य उपमेय।
बरनत तहाँ प्रतीप हैं कोऊ सुकबि अजेय ॥ ६ ॥

जलधर छोड़ि गुमान कौं हौं ही जीवन-दानि।
तोसो ही पानिप भर्‌यो, भावसिंह को पानि ॥ ७ ॥

जहाँ बर्न्य सों और को उपमा बचन न होय।
ताहू कहत प्रतीप हैं कबि-कोबिद सब कोय ॥ ८ ॥

बिक्रम मैं बिक्रम धरम-सुत धरम मैं,
धुंधमार धीर मैं, धनेस वारौं धन मैं।
मतिराम कहत प्रियब्रत प्रताप मैं,
प्रबल बल पृथु, पारथहि वारौं पन मैं।
सत्रुसालनंद रैयाराव भावसिंह आजु
मही के महीप सब वारौं तेरे तन मैं,
नल वारौं नैननि मैं, बलि वारौं बैननि मैं,
भीम वारौं भुजनि मैं करन करन मैं ॥ ९ ॥

कहा कछु न उपमान को यौं जहँ करत बखान।
तहौं प्रतीपहि कहत हैं कोऊ कवि सज्ञान ॥ १० ॥

दिन-दिन दीने दूनी संपति बढ़त जाति,
ऐसो याको कछू कमला को बर बर है,
हेम हाय हाथी हीर बकसि अनूप जिमि,
भूपनि को करत भिखारिन को घर है।
कहै मतिराम और जाचक जहान सब,
एक दानि सत्रुसालनंदन को कर है,
राव भावसिंहजू के दान की बड़ाई देखि
कहा कामधेनु है, कछू न सुरतरु है ॥ ११ ॥

कहा दवागनि के पिएँ, कहा धरें गिरि धीर।
बिरहानल मैं जरत ब्रज, बूड़त लोचन-नीर ॥ १२ ॥

मो मन तम-तोमहिं हरौ राधा को मुख-चंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंद-नंदन आनंद ॥ १३ ॥

मुंज गुंज के हार उर, मुकुट मोर पर पुंज।
कुंजबिहारी बिहरियै मेरेई मन कुंज ॥ १४ ॥

पानिप मैं घर मीन को कहत सकल संसार।
दृग-मीननि को देखियत पानिप पारावार ॥ १५ ॥

कोटि-कोटि मतिराम कहि जतन करो सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूँ होइ ॥ १६ ॥

पानिपयूख पयोधि में नेक नहीं ठहराइ।
नैन मीन ए पलक में मन जहाज गिलि जाइ ॥ १७ ॥

सुवरन बेलि तमाल सों घन सों दामिनि देह।
तूं राजति घनश्याम सों राधे सरस सनेह॥ १८॥

नर नारी सब जपत हैं घर घर हरि को नाँऊ।
मेरे मुख धोखें कढ़त, परत गाज ब्रज गाँउ॥ १९॥

जलद स्याम निज नाम यह करत कहा इत आपु।
जाउर नेक बसो करौ ताही के तन तापु॥ २०॥

तू राखी कर लाल है निज उर में बनमाल।
तैं राख्यौ करि लाल है कंठमाल कौ लाल॥ २१॥

जगै जोन्ह की जोति यों छपै जलद की छांह।
मनो छीर निधि की उठै लहरि छहरि छिति मांह॥२२॥

राधा चरन सरोज नख इन्द्र किए ब्रज चंद।
मोर मुकुट चंद्रकनि तूं चख चकोर आनन्द॥ २३॥

देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग में बिना कपट को नेह॥ २४॥

मंत्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहतु सुख साज।
मनहिं बांधि दृग देत दृग मन कुमार कौ राज॥ २५॥

कहा भयौ तजि जात है सलि न मधुप दुख मानि।
सुवरन बरन सुबास जुत चंपक लहै न हानि॥ २६॥

सरद चंद की चांदिनी को कहिए प्रतिकूल।
सरद चंद की चांदनी को कहिए प्रतिकूल॥ २७॥

को हरि वाहन, जलधि सुत को, को ज्ञान जहाज।
तहां चतुर उत्तर दियौ एक वचन द्विजराज॥ २८॥

—::०::०::—

भूषण

—::०::०::—

१

साजि चतुरंग बीर-रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गै-बरन के रलत है॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत, जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

२

बाने फहराने घहराने घण्टा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने, सुनि
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात लहिराने फन सेस के॥

३

बद्दल न होंहि दल दच्छिन उमंडि आयो,
घटा ये न होंहि इभ सिवाजी हंकारी के।
दामिनी दमंक नाहिं खुले खग्ग बीरन के,
इन्द्र धनु नाहिं ये निसान हैं सवारे के॥
देखि देखि मुगलनि की हरमै भवन त्यागैं,
उझकि उझकि घर छांडन बिगारे के।
दिल्ली-पति भूलि मति खोजत न घोर घन,
बाजत नगारे ये सितारे गढ़वारे के॥

४

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें,
तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते अब विजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥

५

साहि सिरताज औ सिपाहिन में पातसाह,
अचल सुसिंधु के से जिनके सुभाव हैं।

'भूषन' भनत परी सब रन सिवा धाक,
कांपत रहत न गहत चित चाव हैं ।।
अथह विमल जल कालिन्दी के तट केते,
परे युद्ध विपति के मारे उमराव हैं ।
नाव भरि बेगम उतारैं बांदी डोंगा भरि,
मक्का मिस साह उतरत दरियाव हैं ।।

६

किबले के ठौर बाप बादशाह साहिजहां,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाइ है ।
बड़ो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
मेहरहू नाहिं मां को जायो सगो भाई है ।।
बन्धु तौ मुरादबक्स बादि चूक करिबे को
बीच दै कुरान की कसम खाई है ।
'भूषन' सुकवि कहै सुनो नवरंगजेब,
ऐते काम कीन्हे फिरि पातसाही पाई है ।

७

कैयक हजार जहां गुर्जबरदार ठाढ़े,
करिके हुस्यार नीति पकरि समाज की ।
राजा जसवन्त को बुलाय के निकट राख्यो,
तेउ लखैं नीरे जिन्हें लाज स्वामी काज की ।
'भूषन' तबहुं ठठकत ही गुसुलखाने,
सिंह लौं झपट गुनि साहि महाराज की ।
हटकि हथ्यार फड़ बांधि उमरावन की,
कीन्ही तब नौरंग ने भेंट सिवराज की ।।

८

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसल गुसा धारि उर,
कीन्हो न सलाम न बचन बोले सियरे॥
'भूषन' भनत महाबीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥

९

केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरन्द भरे,
भ्रमत भ्रमर लखि फूलन की साज है॥
'भूषन' भनत सिवराज वीर तैं ही देस,
देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है।
त्यागे सदा षटपद-पद अनुमानि यह,
अलि नवरंगजेब चम्पा सिवराज है॥

१०

सांच को न माने देवी देवता न जाने अरु,
ऐसी उर आने मैं कहत बात जब की।

और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुन की,
अकबर साहिजहां कहैं साखि तब की ॥
बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद बांधि गये,
दोनों एक करी ना कुरान वेद ढब की।
कासी हू की कला जाती मथुरा मसीत होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सब की ॥

—::o::o::—

रसखान

—::o::o::—

जो रसना रस ना बिलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका-अंग-संवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वही कालिंदी-कूल कदंब की डारन।।१।।

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं।
ए रसखानि जबै इन नैनन तें ब्रज के बन-बाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं।।२।।

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरैं अरु पाइ वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन आन के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सों है रसखानी।।३।।

सेष सुरेस दिनेस गनेस प्रजेस धनेस महेस मनावौ।
कोऊ भवानी भजौ, मन की सब आस सबैं विधि जाइ पुरावौ।
कोऊ रमा भजि लेहु महा धन, कोऊ कहूँ मनबांछित पावौ।
पै रसखानि वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसावौ।।४।।

कंचन-मंदिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत।
प्रात हीं तें सगरी नगरी नग मोतिन ही की तुलानि तुलैयत।
जद्यपि दीन प्रजान प्रजापति की प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि जौ सांवरे ग्वार सों नेह न लैयत॥ ।

गावैं गुनी गनिका गन्धर्व औ सारद सेष सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥ ॥

सेष गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सु बेद बतावैं।
नारद से सुक ब्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥ ॥

संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।
नैंक हियें जिहि आनत ही जड़ मूढ़ महा रसखानि कहावैं।
जा पर देव अदेव भू-अंगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥ ॥

गुंज गरें सिर मोरपखा अरु चाल गयंद की मो मन भावै।
सांवरो नंदकुमार सबै ब्रजमंडली मैं ब्रजराज कहावै।
साज समाज सबै सिरताज औ छाज की बात नहीं कहि आवै
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥ ॥

संपति सों सकुचाइ कुवेरहिं रूप सों दीनी चिनौती अनंगहिं।
भोग कै कै ललचाइ पुरंदर, जोग कै गंग लई धरि मंगहिं।
ऐसे भए तौ कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति-तरंगहिं।
दै चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहिं॥१०॥

ब्रह्म मैं ढूंढ्यौ पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज-कुटीर मैं बैठौ पलोटत राधिका-पायन॥११॥

गाइ दुहाई न या पै कहूँ, न कहूँ यह मेरी गरी निकर्‌यौ है।
धीरसमीर कलिंदी के तीर खर्‌यौ रहै आजु ही डीठि पर्‌यौ है।
जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि रांग सो आंग ढर्‌यौ है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि अर्‌यौ है॥१२॥

डोलिबो कुंजनि कुंजनि को अरु वेनु बजाइबो धेनु चरैबो।
मोहिनी ताननि सों रसखानि सखानि के संग को गोधन गैबो।
ये सब डारि दिये मन मारि बिसारि दयौ सगरो सुख पैबो।
भूलत क्यों करि नेहन ही को 'दही' कहिबो मुसकाइ चितैबो॥१३॥

आयौ हुतौ नियरें रसखानि कहा कहौं तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज मैं सिगरी बनिता सब वारतिं प्राननि होतिं बलैया।
कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जु कियौ जदुरैया।
गाइ गौ तान जगाइ गौ नेह रिझाइ गौ प्रान चराइ गौ गैया॥१४॥

जा दिन तें वह नंद को छोहरा या वन धेनु चराइ गयौ है।
मोहिनी ताननि गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयौ है।
वा दिन सों कछु टोना सो कै रसखानि हिये मैं समाइ गयौ है।
कोऊ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रज बीर ! बिकाइ गयौ है।।१५।।

आवत हैं बन तें मनमोहन गाइन संग लसै ब्रज-ग्वाला।
बेनु बजावत गावत गीत, अमीत इतै करि गौ कछु ख्याला।
हेरत टेरि कहै चहुं ओर तें, झांकि झरोखन तें ब्रज-बाला।
देखि सु आनन कों रसखानि तज्यौ सब द्योस को ताप-कसाला।।१६।।

—::०::०::—

प्रेमवाटिका

—::o::o::—

प्रेम-अयनि श्रीराधिका, प्रेम-बरन नंदनंद।
प्रेमवाटिका के दोऊ, माली मालिन द्वंद ॥ १ ॥

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत प्रेम न जानत कोइ।
जौ जन जानै प्रेम तौ, मरै जगत क्यौं रोइ ॥ २ ॥

कमल तंतु सो हीन अरु, कठिन खड़ग की धार।
अति सूधौ टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार ॥ ३ ॥

लोक-वेद-मरजाद सब लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि, विधि-निषेध को नेह ॥ ४ ॥

भलें बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै कोटिन कियें उपाय ॥ ५ ॥

ज्ञान कर्म रु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहिं होत, बिन किये प्रेम अनुकूल ॥ ६ ॥

मित्र कलत्र सुबंधु सुत, इनमैं सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमैं नही अकथ कथा सविसेह ॥ ७ ॥

प्रेम हरी को रूप है त्यौं हरि प्रेम-सरूप।
एक होइ द्वै यौं लसैं, ज्यौं सूरज औ धूप ॥ ८ ॥

ज्ञान ध्यान बिद्या मती, मत बिस्वास बिबेक।
बिना प्रेम सब धूरि हैं अगजग एक अनेक ॥ ९ ॥

जेहि पाएं बैकुंठ अरु, हरिहूं की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि ॥ १० ॥

हरि के सब आधीन' पै हरी प्रेम-अधीन।
याहीं तें हरि आपुहीं, याहिं बड़प्पन दीन ॥ ११ ॥

जदपि जसोदानंद अरु, ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग मैं प्रेम कौं गोपी भई अनन्य ॥ १२ ॥

—::०::०::—

घन आनन्द

—::०::०::०::—

जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन करै इहि भाय कों गौन-समै
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यों न कहा बिरमै
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबो न छियै किहि घां सुगमै
घन आनंद आहि कृपा नियरे भजि लै रसमै तजि दै विषमै

नेही महा व्रजभासा प्रवीन अरु सुन्दरतानिके भेद को जानै
जोग बियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप कौं ठानै
चाह के रंग मैं भींज्यौ हियो विछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै
भासा प्रबीन सुछंद सदा रहै सो 'घनजी' के कवित्त बखानै

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भांति की वात छकी
सुनि कैं सबके मन लालच दौरे पै बौरै लखैं सव बुद्धि चकी
जगकी कविताई के धोखे रहैं ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी
समुझै कविता 'घन आनंद' की हिय आंखिन नेह की पीर तकी

छवि को सदन मोह मंडित वदन चंद
तृषित चषनि लाल कबधौं दिखायहौ।
चटकीलौ भेस करें मटकीली भांति सोही।
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ॥
लोचन ढ़राय कछू मृदु मुसिक्याय नेह
भीनी वतियानि लरिकाय वतरायहौ॥

बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे
कृपानिधि आनंद को 'घन' बरसायहो ॥

जा हित मातु को नाम जसोदा सुबंस कौ चन्द्रकला-कुलधारी।
सोभा समूहमयी 'घन आनंद' मूरति रंग अनंग जिवारी।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार-बिलास, सुरास बिहारी।
मेरो मनोरथ हूँ पुरवौ तुमहीं मो मनोरथ पूरन कारी ॥

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार मंझार दई गहि बांहन बोरिए जू ॥
'घन आनंद' आपुने चातक कों गुन बांधि लै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कैं आस बिसास मैं यों बिस बोरिएजू ॥

भए अति निठुर मिटाय पहिचान डारी
याही दुख हमैं जक लगी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुध
हमैं सूल सलनि सो कहूं न भुलाय है ॥
मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहलें तौ तब,
अब जिय जारत कहो धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसें कलपाय है ॥

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिए।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखी अघानि कहूं नहीं आन निहारिए।
एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्‍यौ सुजान सकोच औ सोच सहारिए।
रोकी रहै न दहै 'घन आनंद' बावरी रीझ के हाथनि हारिए ॥

जिन आंखिनि रूप चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित पीर सो पूरित जो हियरा फिर ताहि कहौ कहां लागनि है।
'घन आनंद' प्यारे सुजान सुनौ जियराहिं सदा सुख दागनि है।
सुख मैं मुख चंद बिना निरखे नख तें सिख कौं बिसपागनि है॥

एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन वारी
तोसो और कौन मानै ढ़रकौहीं बानिदै।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान घन
आनंद निधान सुख दाम दुखियानि दै॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे
अबहै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरह बिथाकी भूरि आंखिन मैं राखौं पूरि
धूरि तिन पायन की हा हा नैकु आनि दै॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जामधि सोधि सुधार है लेख्यौ
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यों पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ॥

ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जुआन कथा न कहूं अवरेख्यो।
सो 'घन आनंद' आन अजान लौं टूक कियो पर बांचि न देख्यौ॥

जीव की बात जनाइए क्यों करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरनि मारिकै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ॥

ऐसी बनी 'घन आनंद' आनि जुआन न सूझति सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा पै अमोही सों काहू को मोह न लागौ॥

जिनकौं नित नीकें निहारत हीं तिनकौं अंखियां अब रोवति हैं।
पल पांवड़े दायनि चायनि सों अंसुवानिके धारनि धोवति हैं।
'घन आनंद' जान सजीवन कों सपने बिन पायेई खोवति हैं।
न खुली मुंदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं॥

पहले पहिचानि जुमानि लई अब तो सु भई दुख मूल महा।
इतकै हित बैर लियो उतह्वै बिन ज्यौ हरि ब्यौहरि लोभ लहा॥
'घन आनंद' मीत सुनौ अरु उत्तर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्है पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायो कहा॥

जब तैं तुम आवन आस दई तब तें तरफौं कब आयहौ जू।
मन आतुरता मन ही में लखौ मनभावन जान सुभाय हौ जू॥
विधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौजू॥
सरसो 'घन आनंद' वारस कौं जु रसा रससो बरसायहौ जू॥

सदा कृपानिधान हौ कहा कहौ सुजान हो
अमानिदान मान हौ समान काहि दीजिये।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे खरे प्रतीति के
निकेत नीति रीति के सुदृष्टि देखि जीजिये॥
ठगी लगी तिहारि पै सु आप त्यों निहारियै
समीप ह्वै बिहारियै उमंग रंग भीजिये।
पयोद मोद छाइए बिनोद को बढ़ाइए
विलंब छांड़ि आइए किधों बुलाय लीजिये॥

मो-से अन पहिचान को, पहिचानें हरि कौन।
कृपा मान मधि नैन ज्यों, त्यों पुकार मधि मौन॥
मोही मोह जनाय कै, अहै अमी ही जोहि।
सोही मोही सो कठिन, क्यों करि सोही तोहि॥

—::०::०::—

आपु ही तें तन हेरि हंसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौ सु कहौ कित जाउं मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहि गाउं मैं।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे कित जीजियै जू
रस नायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू
बसि कै इक गांव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू।

तब तौ दुरि दूरहि तें मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हंसे
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहां धौं बसे
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहें धंसे।

ब्रज मोहन रूप-छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते
घन आनन्द भीजे रहैं निसि द्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियै ते सुखदानियै ते
जा दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियै ते।

—::o::o::—